मृत्यु का वास्तविक स्वरूप तथा उस के
भय को दूर करने का उपाय—
एक सरल, सुबोध विवेचन ।

सम्पादक एवं प्रकाशक

ओम प्रकाश आर्य

196 प्रेम नगर, करनाल ।

प्रथम संस्करण 1990 मूल्य : 3 रुपये

ओ३म्

प्रस्तावना

मौत का नाम सुनते ही सभी भयभीत हो जाते हैं। जब मृत्यु अवश्यम्भावी है तब इससे डर क्यों लगता है ? मृत्यु का असली स्वरूप क्या है ? मृत्यु किस की होती है, शरीर की या शरीरी की ? मृत्यु भय का कारण हमारा अज्ञान, मोह और स्वार्थ है या कुछ और। इन सब बातों का ज्ञान परमावश्यक है। संयोग और वियोग का चक्र तो जब तक दुनिया है चलता रहेगा। परन्तु यदि हमें अपने और शरीर के स्वरूप और सम्बन्ध का ठीक ठीक ज्ञान हो जाये तो हम मृत्यु का सामना करने के योग्य हो सकते हैं। उस अवस्था में मृत्यु हमारे लिए भयप्रद न रहेगी अपितु विश्राम देने वाली और नये साधनों से संयुक्त होने और आगे का सफर करने के योग्य बनाने वाली सिद्ध होगी। "मृत्यु मीमांसा" में आप को इस प्रकार के ज्ञान-वर्धक विचार पढ़ने को मिलेंगे। सुयोग्य विद्वानों के मृत्यु के स्वरूप, आत्मा की अमरता तथा जीव और शरीर के सम्बन्ध विषयक विचार जहां जहां से मिले उन सबको क्रमबद्ध कर के प्रकाशित कराया जा रहा है।

आशा है 'अमृत मन्थन' की तरह इस पुस्तिका को भी सन्देह निवारक एवम् उपयोगी समझा जायेगा तथा इसका यथेष्ठ प्रचार होगा। जिन विद्वानों के लेखों या पुस्तकों से लाभ उठाया गया है संकलन कर्त्ता उन सब का आभारी है। प्रकाशन का सारा दायित्व मान्यवर पंडित शालिगराम पराशर जी ने अपने ऊपर लेकर जो क्रियात्मक सहयोग दिया है उस के लिए उन का हार्दिक धन्यवाद। पं० भूदेव जी शास्त्री तन, मन, धन से सहयोग देकर उत्साह वर्धन करते रहते हैं। अपने जीवन का शेष भाग अब इसी काम पर लगाने का मेरा संकल्प है। प्रभु शक्ति दें कि अपने पूज्य विद्वानों के विचारों को फैलाने का यह मेरा संकल्प पूरा हो।

ओम प्रकाश आर्य

जीवन पथ

कार्य क्षेत्र पड़ा है विस्तृत, फिर क्यों आशा भग्न ?
कर कर्तव्य सुनिश्चित अपना, उस में हो संलग्न ।

यात्रा बड़ी विकट है सन्मुख, नहीं सूझता पथ है ।
क्या निर्मम जीवन की गाथा, दारुण और अकथ है ।।

होने दे क्या चिन्ता तुझ को, तुझे सदा चलना है ।
पश्चाताप न करना कुछ भी, नहीं हाथ मलना है ।।

भूल न जाना तू अपना पथ, ध्यान इसी का रखना ।
मीठे कड़वे जैसे फल हों, है अवश्य ही चखना ।।

चलते चलते वहां पहुंचना, तेरा है उद्देश ।
चिन्ता नहीं जहां पर कुछ भी, जहां न पथ है शेष ।।

—आचार्य सिद्धेश्वर जी

ओ३म्

मृत्यु मीमांसा

मृत्यु क्या है – यह एक जटिल प्रश्न है। इस पर भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। साधारण मनुष्य की दृष्टि से मृत्यु इस शरीर रूपी कार्य क्षेत्र की क्रियाओं का अन्त है। हम जीवित और मरे हुए मनुष्य को देखते हैं। जीवन में क्रिया और गति है, हाथ-पैर हिलते हैं, आंखें झपकती हैं, सांस लिया जाता है और शरीर में चोटी से लेकर एड़ी तक क्रिया ही क्रिया दिखाई देती है। जब मौत आने को होती है तो क्रिया आहिस्ता आहिस्ता मन्द होने लगती है और सांस अन्त तक चलता रहता है। जब वह भी बन्द हो जाता है तो उस शरीर को मृत्यु-ग्रस्त या मृत कहा जाता है। क्रिया या क्रिया शक्ति की समाप्ति का नाम मृत्यु है और इस मृत्यु की दशा को देख कर हम को जीव के स्वतन्त्र कर्ता होने में बड़ा सन्देह हो जाता है। जीव यदि स्वतन्त्रकर्त्ता है, तो क्रिया क्यों समाप्त होवे, यदि उसने स्वयं बन्द कर दी तो यह बात समझ में नहीं आती, क्योंकि मरना कौन चाहता है? यदि किसी दूसरे ने क्रिया बन्द की, तो जीव स्वतन्त्रकर्त्ता नहीं रहता। यह सब भ्रम है। मृत्यु के स्वरूप को समझ लेने से यह भ्रम दूर हो जाएगा– मृत्यु क्रिया की समाप्ति नहीं है? फिर क्या है?

मृत्यु =जीवन रूपी नाटक का पटाक्षेप है?

जो इस जीवन को एक नाटक समझते हैं, उनके लिए मृत्यु इस नाटक का पटाक्षेप है, यह एक अंश में ठीक है, परन्तु सर्वाङ्ग में ठीक नहीं। नाटक का प्रयोजन केवल मनोरंजन से या किसी विशेष प्रकार के भाव उत्पन्न करने से है। जीवन ऐसा नाटक नहीं, जिसका कभी अन्तिम पटाक्षेप होता हो। मृत्युरूपी पटाक्षेप से नवीन नाटक की रचना होती है। इस जीव की यात्रा में बन्ध और मोक्ष दो मञ्ज़िलें हैं। बन्ध की दशा में अनेक नाटक होते रहते है। हम तो यह कहेंगे कि एक ही नाटक चलता रहता हैं। केवल पट या परदे बदलते रहते हैं। मृत्यु को जीवन रूपी नाटक का पटाक्षेप समझना कोरा अज्ञान है। योगी, ऋषि और मुनि मृत्यु को इस दृष्टि से नहीं देखते। वे मृत्यु को अन्त नहीं बल्कि एक परिवर्तन मानते हैं।

मृत्यु—वैद्य या डाक्टर की दृष्टि में

जब जीव शरीर धारण कर लेता है, तो उसकी क्रिया का क्षेत्र यह शरीर हो जाता है। शरीर तीन हैं, एक यह स्थूल शरीर है जो सब को दिखलायी देता है, दूसरा सूक्ष्म शरीर है, तीसरा कारण शरीर है। उपचार करने वाले वैद्यों या डाक्टरों की पहुंच स्थूल शरीर तक है और वह भी अधूरी, इसलिए इस से आगे की बात वे नहीं जानते। मनुष्य शरीर जीवात्मा के रहने का मकान है। वैद्य या डाक्टर इस मकान के इंजीनियर हैं और इंजीनियर भी ऐसे कि न इस का नक्शा बना सकते हैं और न बनवा सकते हैं। अधिकाधिक इसकी मुरम्मत करने का दावा कर सकते हैं और इस मुरम्मत के कार्य में भी उन से अनेक भूलें हो जाती हैं। अन्दर की दशा का तो बहुधा पता ही नहीं चलता। यदि बच्चा बीमार हो, जो अपना हाल स्वयं नहीं कह सकता, उस के इलाज में और भी ज्यादा कठिनाई होती है। इसके साथ ही रोग की दशा में रोगी को खाने और पीने को क्या दें, इसके सम्बन्ध में भी प्रायः अनुमान से ही काम लिया जाता है और अब कई डाक्टर तो सब कुछ खाओ कहते सुने जाते हैं हालांकि रोग आया ही सब कुछ बिना विचार किए खाने से है। वास्तव में रोग के निदान और उपचार के लिए केवल शरीर का वैद्य या डाक्टर ही पर्याप्त नहीं, आत्मा का भी चिकित्सक होना चाहिए। प्राचीन काल में आत्मा को रोग मुक्त कर स्वस्थ बनाने रखने के लिए जहां यम नियम और योगदर्शन के अनुसार अपनी जीवन चर्या बनाने पर बल दिया जाता था, वहां दूसरी ओर चरक शास्त्र के द्वारा शारीरिक रोगों की निवृत्ति का ढंग भी सिखाया जाता था। अतः वर्तमान में भी डाक्टर या वैद्य और रोगी दोनों का ईश्वर पर विश्वास का होना जरूरी है। यदि रोग का इलाज करने वालों का परिश्रम सफल हो जावे, तो ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए। यदि असफलता रहे तो अपनी अल्पज्ञता को दोष देते हुए सन्तोष करना चाहिये। प्रयत्न भरसक करना चाहिए और जिस प्रकार सारे कर्मों के क्षेत्र में कर्मों का फल ईश्वर पर निर्भर है, वैसे ही इस चिकित्सा के जगत् में भी होना उचित है। किसी डाक्टर या वैद्य को अपने ज्ञान पर अभिमान करना ठीक नहीं और न रोगी की सेवा करने वालों को चिकित्सकों की असफलता पर व्यर्थ क्रोध करना चाहिए। शरीर विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले सुविज्ञ जनों के हम आभारी हैं कि उन्होंने बहुत से असाध्य माने जाने वाले रोगों का इलाज भी खोज निकाला है। यदि कहीं सफलता नहीं मिलती तो उन्हें अपने प्रयासों में ढील न

आने देनी चाहिए। हां—उपचार करते समय उनके मुख से यह शब्द जरूर निकलने चाहिएं—

हम दवा देते तो हैं लेकिन शफा देता है तू
खाक में अकसीर के जौहर दिखा देता है तू।

मृत्यु सम्बन्धी कुछ आवश्यक विचार

1. अभी कोई प्राणी मरा नहीं है, परन्तु मरने से पहले मौत से वह डरता है। यह क्यों? इस से पूर्व जन्म का सिद्धान्त सिद्ध होता है। वर्तमान शरीर प्राप्त होने से पूर्व उसे मृत्यु का अनुभव हो चुका है और मोह एवं लोभ के कारण जो पूर्व जन्म में उसे दु:ख हुआ था, उस से इस जन्म में बचने के लिए वह डरता है।

2. सब मनुष्य जानते हैं कि अवश्य मरना है और न केवल उन्ह बल्कि उन के सब सम्बन्धियों को भी मरना है, परन्तु कोई न तो स्वयं मरना चाहता है और न उस को मरने देना चाहता है जिस से वह प्यार करता है। अपने किसी शत्रु के लिए अवश्य मर जाने की इच्छा करता है, परन्तु मृत्य का समय या मृत्यु किस प्रकार होगी, इसका किसी को पता नहीं चलता। जीव का यह अज्ञान उस पर परमात्मा की महान् कृपा है। यदि हमें दस वर्ष पहले मृत्यु का समय, स्थान और प्रकार मालूम हो जाये, तो वे दस वर्ष मरने से बदतर हो जाएंगे। आनन्द तो इसी में है कि सब को जीने की आशा बनी रहे एवम् सब इस आशा में कर्म करते रहें और मौत के आ जाने पर इसे दैव विधान एवम् अपने ही कर्मो का फल समझ कर सन्तोष कर लें।

मृत्यु की उपमा

1. मृत्यु घर बदलना है।
2. पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र पहनना है।
3. सर्प की तरह केंचली उतार देना है।
4. मृत्यु एक निद्रा है जिस से दोबारा जागने का समय हमें ज्ञात नहीं।
5. मृत्यु एक यात्रा है।
6. मृत्यु परलोक गमन है।
7. मृत्यु मोक्ष का द्वार है।
8. मृत्यु स्वर्ग की सीढ़ी है।
9. मरना नरक में जाना है।

इसी प्रकार के अनेक विचार मृत्यु के सम्बन्ध में पाये जाते हैं। इन से पता लगता है कि मृत्यु दशा परिवर्तन का नाम है और वह इस जीवन रूपी

लीला का अन्त नहीं बल्कि इस लीला का नवीन रूप उपस्थित होने का साधन है।

उपर्युक्त सब विचारों में मृत्यु को एक परिवर्तन माना है और परिवर्तन के लिए एक स्थायी सत्ता की आवश्यकता है। यात्रा में यात्री आरम्भ से अन्त तक एक ही रहेगा। यदि मार्ग के बीच में कोई दूसरा यात्री पहले यात्री का स्थान ले ले, तो पहले यात्री की यात्रा समाप्त समझी जायेगी।

मृत्यु को जीवन का अन्त कौन मानते हैं

जो अत्यन्त भोग विलासी हैं और अपने कर्मों के फल से बचना चाहते हैं, वे न तो आवागमन मानते हैं और न ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं। चार्वाक एवम् वाममार्गियों का सिद्धान्त है कि शरीर के भस्म हो जाने के साथ ही जीवन का अन्त हो जायेगा। इसलिये खाओ पियो और मौज करो।

यही हाल आजकल पश्चिमीय जगत् में पदार्थ विज्ञान वालों का है; जो केवल इस शरीर के सुख की सामग्री एकत्र करने में लगे हैं। वे आत्मा के परलोकगमन का कोई विचार नहीं रखते।

मृत्यु विकास का साधन है

मृत्यु से भविष्य में उन्नति के लिये अथवा आत्म विकास प्राप्त करने के लिए नवीन साधन दूसरे जन्म में मिलते हैं। यदि मनुष्य शरीर प्राप्त करके पाप करता है, तो उस को पाप का फल भोगने के लिए और सुधार प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न योनियों में जाना पड़ता है, चाहे वे योनियां पशु-जगत् की हों, चाहे वृक्ष जगत् की। 'पाप का सिर नीचा' यह एक प्रसिद्ध कहावत है। हम मनुष्य से लेकर वृक्ष तक अपनी दृष्टि ले जाएं तो सब योनियों में शरीर निर्माण की दशा में भेद है और वह भेद मुख्य रूप से शिर के ऊंचा या नीचा होने का है। हम अपने सामने निम्नलिखित योनियों को लें :—

1. मनुष्य—यह सीधा खड़ा होता है और इस का सिर ऊपर को होता है।

2. हाथी घोड़े गाय इत्यादि—इनका सिर नीचे झुका हुआ होता है, परन्तु शरीर पृथ्वी से ऊपर उठा होता है।

3. सर्प इत्यादि—इनका सिर और शरीर दोनों पृथ्वी से मिले हुए होते हैं और वे रींग कर चलते हैं।

4. वृक्ष—इन का सिर बिल्कुल नीचे होता है और हाथ पैर ऊपर। इन को खाना पीना नीचे से प्राप्त होता है, जिस को हम जड़ कहते हैं। जब जीव के पाप पुण्य बराबर या पुण्य अधिक होते हैं तो उसको मनुष्य योनि प्राप्त होती है। जब पाप अधिक होते हैं तो पशु-योनि में जन्म लेना पड़ता है और जब जीव घोरतम पाप करता है तो उसे वृक्ष-योनि में डाल दिया जाता है। इसीलिए किसी से कहना कि तेरा सिर नीचे और पैर ऊपर कर दिए जायेंगे गाली समझा जाता है। विकासवाद वाले इस श्रृंखला को नीचे से अथवा वृक्ष से देखना आरम्भ करते हैं और सब योनियों के शरीर निर्माण की दशा को लक्ष्य में रख कर इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि नीचे से प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण ऊपर तक उन्नति होती है। यह उन का भ्रम है। वे यह भूल जाते हैं कि इस सारे विकास में एक स्थायी अनादि सत्ता होनी चाहिये। जिस का विकास नीचे से ऊपर तक हो और वे यह भी भूल जाते हैं कि इस सारे विकास का कोई एक निमित्त कारण होना चाहिये, अपने आप विकास या उन्नति प्राप्त नहीं हो सकती। केवल शरीर निर्माण की अवस्था को देखकर उन का यह कह देना कि छोटे से बड़ा शरीर धीरे धीरे बना है, बच्चों की सी भूल है। यदि हम बहुत से मकानात एक से बने हुए देखें तो हमको यह कहना चाहिये कि इन मकानों को बनवाने वाला कोई एक इन्जीनियर है, जिस ने सब का नक्शा एक सा बनाया है और आवश्यकतानुसार उसमें भेद कर दिया है। जैसे भालू ठण्डे देश में होता है तो उस के ऊपर बाल कम्बल की आकृति में लगा दिये हैं और ऊंट रेगिस्तान में होता है, तो उसके अन्दर पानी भरने का डोल है। विकासवाद ने यह सारी भूल वैदिक शिक्षा के लोप हो जाने से की, न पश्चिमी जगत् ने मृत्यु के स्वरूप को समझा और न यह समझा कि मृत्यु विकास का निमित्त अथवा साधन है।

मृत्यु सुन्दरता उत्पन्न करती है

सुन्दरता जगत् में भेद के कारण है। जहां अधिक काले रंग के होते हैं, वहां गोरे सुन्दर समझे जाते हैं। दो आंख वालों को सुन्दर अन्धों की अपेक्षा ही कहा जाता है। इसी प्रकार जीवन में आनन्द तो मृत्यु के भय से ही है। 'न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या' यह उर्दू के प्रसिद्ध कवि गालिब का शेर है और इसके अन्दर बड़ा उत्तम भाव है। यदि मौत का डर न होता तो जान किसी को प्यारी न होती और जान प्यारी न होने से मनुष्य कोई काम ही न कर सकता। फिर तो सारा जीवन ही निष्प्रयोजन और व्यर्थ हो जाता। मौत के भय से मनुष्य कर्म करने में तत्पर रहता है और जल्दी

जल्दी अपने जीवन के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए उत्साह से कार्य करता रहता है। इस जीवन रूपी नाट्यशाला में मृत्यु ही एक ऐसा पट है, जिस ने सारे नाटक में जान डाल दी है, नहीं तो न कोई लक्ष्य होता और न किसी लक्ष्य की पूर्ति।

मृत्यु से अहिंसा की शिक्षा

जो चीज़ हम किसी को दे नहीं सकते, उसे हमें लेने का कोई अधिकार नहीं। हम में किसी को जीवन प्रदान करने की शक्ति नहीं है। पदार्थ विज्ञान वाले भी मृत्यु से हारे है। वह न किसी को जिला सके, न मरने से बचा सके और न मौत को समझ सके। औरों को बचाने की तो बात ही क्या वे अपने आप को भी मृत्यु के मुख में जाने से रोक नहीं पाये। उन्होंने पदार्थ विज्ञान के अन्वेषणों में अनेक पशु और पक्षियों को चीर-चीर कर देखा और उन के शरीर की बनावट को समझने का उद्योग किया, परन्तु उस सब सामग्री के होते हुए भी जो उन्हों ने स्वयं किसी प्राणी को चीर फाड़ कर एकत्र की है वे न तो पुनः उस शरीर को ज्यों का त्यों जोड़ सके और न जीवित कर सके। मौत को रोकना तो क्या, मौत के कारणों को भी अभी तक वे समझ नहीं पा रहे। अतः किसी की हिंसा करने का विचार हमें स्वप्न में भी नहीं करना चाहिये। यदि मृत्यु से इस शिक्षा को मनुष्य ग्रहण कर लें तो अहिंसा का प्रचार सुगमता से हो सकता है।

मृत्यु और स्वर्ग

स्वर्ग और नरक का प्रश्न भी मृत्यु से बहुत सम्बन्धित है। स्वर्ग कहां है और स्वर्ग सम्बन्धी विचार कैसे फैले यह समझ लेना आवश्यक है। स्वर्ग के सम्बन्ध में तीन बातें ध्यान में रखनी चाहिएं।

1. क्या स्वर्ग किसी देश विशेष या काल विशेष का नाम है?
2. क्या स्वर्ग अवस्था विशेष का नाम है?
3. स्वर्ग और नरक का वास्तविक रूप क्या है?

क्या स्वर्ग ऊपर है?

जब स्वर्ग का नाम लिया जाता है तो लोग आकाश की ओर अंगुली उठाते हैं, जिस से विदित्त होता है कि स्वर्ग भूगोल की दृष्टि से हमारे सिर से ऊपर की ओर आकाश में है या आकाश के समीप है। इस मिथ्या विश्वास का भी एक मुख्य कारण है। स्वः शब्द से सुख या प्रकाश—उजाले का परिचय मिलता है। प्रकाश के साधन सूर्य, चन्द्रमा और तारागण सभी हमें

ऊपर दिखाई देते हैं और नीचे की दशा अन्धकारमय या तम की दशा है। स्वर्ग का सम्बन्ध सुख और उजाले से है। इसलिए स्वर्ग को ऊपर माना जाता है और नरक को नीचे। वास्तविक बात यह है कि स्वर्ग और नरक न कोई स्थान विशेष है और न किसी काल विशेष से उन का सम्बन्ध है। यह तो सुख और दु:ख को लक्ष्य में रख कर मनुष्य-योनि की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के नाम हैं। यहीं स्वर्ग है और यहीं नरक है। हम अपने लिए चाहे सुख की वृद्धि कर लें या दुख की—यह हमारे अपने हाथ में है। पूर्वकृत कर्मों का फल तो हमें भोगना ही पड़ेगा, परन्तु मानव तन में आकर हम यदि सद्भावों के बीज अपने अन्तःकरण की भूमि में बोना चाहें तो हमें बाहर की कोई शक्ति रोक नहीं सकती। अपने व्यवहार और आचार के द्वारा हम संसार के सुख को बढ़ा सकते हैं, परन्तु शर्त पहले अपने ऊपर कड़ा नियन्त्रण करने की है। स्वर्ग और नरक के इस स्वरूप को ध्यान में रख कर हम अन्य अनेक मिथ्या और भ्रान्त विचारों और विश्वासों के बन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

स्वर्ग या मोक्ष सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विचार

मोक्ष या स्वर्ग के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विचार देखने में आते हैं :—

1. स्वर्ग भोगवादियों का है।
2. त्याग वादियों का है।
3. मर्यादा वादियों का है।

जिन के जीवन का लक्ष्य अधिकतर भोग विलास है—जैसे हमारे मुसलमान भाइयों का—वे स्वर्ग को इस जीवन का एक विकसित संस्करण मानते हैं। उन की धारणा है कि जीवन में एक स्त्री से या चार स्त्रियों से सुख मिलता है तो स्वर्ग में अनेक हूरें होंगी। यहां एक गिलास दूध से तृप्ति होती है, वहां दूध की नहरें होंगी। यहां मिठाई अच्छी लगती है, इसलिये वहां शहद के चश्में होंगे। इसी प्रकार त्यागवादियों का हाल है। जैन और बौद्ध भाई इन में प्रमुख हैं। इन के जीवन का लक्ष्य यहां महान् त्याग हैं, कम से कम खाना, कम से कम पीना और नंगे रहना इन का आदर्श है। इसलिये ये मोक्ष को निर्वाण या शून्य की दशा से उपमा देते हैं। इन दोनों से भिन्न मर्यादावादी वैदिक धर्मी है। न अत्यन्त त्याग और न अत्यन्त भोग इनका आदर्श है। मानसिक और आत्मिक बल की प्राप्ति इन का लक्ष्य है। जिस का मन काबू में है, उस को न गरीबी में विशेष कष्ट होता हैं और न अमीरी में कोई विशेष सुख।

इस प्रकार जीवन मर्यादित रहता है, इसलिये मोक्ष के सम्बन्ध में मर्यादा वादियों की धारणा है कि मोक्ष—प्राप्त जीव परमात्मा की बनाई इस सृष्टि में बिना किसी विघ्न वाधा के स्वच्छन्द विचरेगा। न तो यह मानने की आवश्यकता है कि वहां दुनियां के आराम के सामान के ढेर लगे हुए हैं और न यह मानने की कि वहां सामान बिल्कुल नहीं है। मोक्ष की दशा में तो इच्छा पूर्ति का पूरा-पूरा अनुभव और आनन्द है । उपर्युक्त विवेचन से विदित हो गया होगा कि स्वर्ग और नरक कहीं ऊपर-नीचे, दायें-बायें अथवा चौथे या सातवें आसमान पर—जैसा कि हमारे ईसाई और मुसलमान भाई मानते या पौराणिकों की मान्यता है—नहीं है। यह तो अवस्था विशेष का नाम है। यहां यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्वर्ग और नरक में निवास भी सदैव के लिए नहीं माना जा सकता। स्वर्ग में रहने वाली बात तो बड़ी प्यारी लगती है और इस लिये यह प्रसिद्ध विचार है कि मर कर हमेशा स्वर्ग में रहेंगे, फिर यहां नहीं लौटेंगे। परन्तु नरक में हमेशा रहने वाली बात बहुत खटकती है । सत्य बात यह है कि सुख और दुःख अर्थात् स्वर्ग रूपी अवस्था और नरक रूपी अवस्था हमारे कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होती है और सीमित कर्मों का फल सीमित ही होगा। इसलिए मोक्ष की अवधि भी निश्चित और नियत है। सदा के लिए न मोक्ष है और न बन्धन है। यह बात बिल्कुल ठीक है कि मोक्ष की अवधि बहुत बड़ी और लम्बी है, परन्तु है निश्चित।

मृत्यु के पश्चात् के विषय में

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। कोई भी फ़िलासफर या किसी मत का परवर्तक ऐसा नहीं हुआ है जिस ने मृत्यु को इस जीवन का अर्थात् इसे जीवात्मा की सत्ता का अन्त माना हो । सब यह मानते हैं कि जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् अवश्य उठेगा और उस को फिर कर्म करने का क्षेत्र प्राप्त होगा। कोई यह मानते हैं कि जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् अपने कर्मों के अनुसार दूसरा शरीर धारण करेगा और उसको मनुष्य शरीर कर्म करने और कर्मों का फल भोगने को मिलेगा और जब उसके कर्म बहुत अधिक मात्रा में शुभ हो जावेंगे, तो उस को एक नियत अवधि के लिए इस जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा प्राप्त होगा और वह मोक्ष प्राप्त करेगा। यह प्राचीन वैदिक धर्म का सिद्धान्त है। इतिहास की दृष्टि से वैदिक धर्म के पश्चात् पारसी मत का नम्बर आता है । इस मत में जीवात्मा की सत्ता अनादि मानी गई है। इन का विश्वास है कि जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् कायम

रहेगा और उस को अपने कर्मों का फल भी भोगना पड़ेगा। यह स्वर्ग और नरक में भी विश्वास रखते हैं और मानते हैं कि हर एक जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग में जाएगा या नरक में।

पारसी भाई यह भी मानते हैं कि अन्त में अरमुज्द (नेकी के ईश्वर) की विजय अहरमन पर होगी और ईश्वर की शक्ति की विजय होगी। इन का दो प्रकार की शक्तियों के मानने का ही परिणाम आगे चलकर ईसाई और मुसलमान भाईयों में रहमान और शैतान की दो भिन्न भिन्न सत्ताओं में विश्वास का कारण हुआ।

मिस्टर F.V. जीवन्स ने एक पुस्तक लिखी है जिस का नाम है "An Introduction to the History of Religions" अर्थात् 'धर्मों के इतिहास की भूमिका'। उस के आधार पर Encyclopedia Britanica में मृत्यु के पश्चात् की दशा के सम्बन्ध में जो विचार दिये गये हैं उन में से ही पारसी मत का जो विश्वास है, वह हमने ऊपर दे दिया है।

पारसी मत के पश्चात् इतिहास की दृष्टि से बौद्ध मत का नम्बर आता है। बौद्ध मत वाले अत्यन्त त्यागवादी हैं। जीवन में इन का आदर्श महान् त्याग है और मरने के पश्चात् वे जीवात्मा का आदर्श निर्वाण, या कर्मों से ज़रा भी लिप्त न रहना मानते हैं। ये चाहे स्पष्ट रूप से मरने के पश्चात् जीव की सत्ता शेष न मानें, परन्तु कर्मों को शेष अवश्य मानते हैं और जब कर्मों को शेष मानते हैं ती कर्मफल भोगने वाले की सत्ता तो माननी ही पड़ेगी। आगे चल कर वौद्ध मतानुयायी अनेक प्रकार के नरक, स्वर्ग और आवागमन में भी विश्वास रखने लगे।

बौद्ध मत के पश्चात् यहूदियों का नम्बर है। इन का भी विश्वास है कि जीवात्मा मरने के पश्चात् किसी विशेष दिन उठेगा और ईश्वर की कृपा से उस का उद्धार होगा। कयामत के दिन का मानना इन से ही आरम्भ हुआ है। कयामत के दिन को मानने वालों में यह पाया जाता है कि प्रत्येक को मरने के पश्चात् कर्मों का फल अवश्य मिलेगा, चाहे किसी पैगम्बर की सिफ़ारिश से अपने बुरे कर्मों के फल से बच जाये और उस को क्षमा कर दिया जाये।

यहूदियों के पश्चात् ईसाई मत का नम्बर है। ईसाइयों में यह माना जाता है कि ईसामसीह मर कर तीसरे दिन जी उठे। इस को (Ressurection) कहते हैं। इन का यह भी विश्वास है कि जीवात्मा मरने के पश्चात् अर्थात्

इस शरीर को त्यागने पर अपने कर्मों का फल पायेगा परन्तु ईश्वर ईसामसीह की सिफ़ारिश पर ईसाइयों को स्वर्ग में भेज देगा।

ईसाई मतानुयायियों में ईसामसीह के मर कर जी उठने सम्बन्धी विचार अब काफी बदल गये हैं। वे अब नहीं मानते कि जीवात्मा इसी शरीर के साथ पुन: उठ सकता है, हां अन्य शरीर धारण कर सकता है।

डाक्टर Ernest William Barnes Bishop of Bermingham ने एक पुस्तक लिखी है, जिस का नाम है "The world described by science and its spiritual interpretation".

इस पुस्तक के पृष्ट 637 पैरा 4817 में इस प्रकार लिखा है :—

Modern Chemistry has made everyone of any education familiar with the fact that atoms of which the matter of our bodies consist are described by the decay which follows death and many afterwords enter into the bodies of other human beings. The phrase resurrection of the body which occurs in the usual translation of the Apostle creed is therefore held to be a mere synonim for the survival of personality unless by a species of interpretation which is absolutey groundless, it is taken of life to the resurrection of Chirst."

इस का सार यह है कि रसायन शास्त्र के वर्तमान रूप ने कम पढ़ें लिखों को भी यह बात भली भान्ति समझा दी है कि प्राकृतिक परमाणु जिन से हमारा शरीर बना हुआ है, मरने के पश्चात् छिन्न-भिन्न हो जायेंगे और दूसरे शरीरों के निर्माण में सम्मिलित हो सकते हैं। शरीरों के पुन: उठने का जो शब्द बाइबिल में आया है, उसका अभिप्राय केवल जीव के मृत्यु के पश्चात् शेष रह जाने से है। ईसामसीह के उठने का अर्थ निकालना बिल्कुल निराधार और निर्मूल है।

ईसाइयों के पश्चात् मुसलमानों का जो मत है, उस में तो कयामत सम्वन्धी विचार स्पष्ट रूप से पाये जाते हैं। ईसाइयों की भांति इन का भी यह विचार है कि किसी एक विशेष तारीख में तमाम आत्माएं उठेंगी और ईश्वर उन का न्याय करेगा। उस समय हज़रत मुहम्मद सिफारिश से मुसलमानों को जन्नत (स्वर्ग) में प्रवेश करा देंगे। मुसलमानों में भी अहमदी भाई अब यह मानने लगे हैं कि खुदा जीवात्मा को उत्पन्न तो करता है, परन्तु मारता नहीं अर्थात् जीव का आदि तो है पर अन्त नहीं।

उन की यह मान्यता भी बुद्धि संगत नहीं, क्योंकि जिसका आदि है उसका अन्त भी अवश्य है और जिसका आदि नहीं उसका अन्त भी कभी सम्भव नहीं।

किसी भी विचारशील की बुद्धि यह स्वीकार नहीं करती कि इस शरीर में काम करने वाली चेतन सत्ता जिसे जीवात्मा कहते हैं उसका अन्त शरीर के साथ ही हो जाता है। एक जीवात्मा ज्ञान प्राप्ति आरम्भ करता है, अभी उसका ज्ञान परिपूर्ण नहीं हुआ, न कर्म ही समाप्त हुये और न उस को कृत कर्मों के फल भोगने का ही अवसर मिला है, फिर यह कैसे माना जा सकता है कि जीवात्मा की सत्ता इस शरीर को छोड़ने के पश्चात् शेष नहीं रहेगी और उस को ज्ञान एवम् कर्मों की श्रृंखला को पूर्ण करने का अवसर नहीं मिलेगा। पदार्थ विज्ञान वाले जब तक केवल जड़ जगत् की मीमांसा में लगे रहे तब तक उन को न जीव के स्वरूप का पता चला और न उस के अनादि होने का। न वे मृत्यु को समझे और न जीवन को। उन्हों ने केवल प्राकृतिक पदार्थों के निर्माण की व्यवस्था को समझने में शताब्दियां लगा दीं। जब उन का दृष्टिकोण विस्तृत हुआ और उन्हें यह प्रतीत हुआ कि इस जड़ जगत् में कोई चेतन शक्ति भी काम कर रही है, तब उन को जीवात्मा के स्वरूप का ज्ञान हुआ और वे इस की सदा रहने वाली सत्ता में भी विश्वास रखने लगे। हम दो पश्चिमीय दार्शनिकों की सम्मतियों से अपने इस कथन की पुष्टि करेंगे :—

1. डाक्टर E.W. Barns ने अपनी पुस्तक 'The world described by science and its spiritual interpretation' में जीव के मृत्यु के पश्चात् की सत्ता के सम्बन्ध में निम्न प्रकार विचार प्रकट किये हैं :—

"Spiritual struggle makes human beings both worthy and recipients of eternal life. We certainly seem forced to speculate that after death there must be continuity of experience, if personality is to be preserved. Moreover having regard to the imperfections of human personality as we observe it such continuity must apparently extend throughout a series of life during which evil is overcome by goodness and falsehood by truth."

अर्थात् जीवात्माओं का प्रयत्न उन को अधिक योग्य बनाता है और उन्हें अमरपद प्राप्त करने के लिए अधिकारी बनाता है। हमारे लिए इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनिवार्य है कि मरने के पश्चात् कर्म करने की श्रृंखला

अवश्य रहनी चाहिये। यदि जीवात्मा की सत्ता को कायम रखना है और मनुष्य की आत्माओं की अपूर्णताओं को देखकर हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि अनेक बार उस आत्मा को शरीर धारण करने होंगे जिस से उस के पापों का नाश हो कर उस में नेकी आयेगी और असत्यता के स्थान पर सत्य आयेगा।"

B. Bosanqet ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Value and destiny of the Individual' के 1913 के संस्करण में पृ० 288 पर इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं :—

There must be future gradation of experience continuous with our finite selves. We postulate such gradations because future continuity with our present selves is a necessary truth if as we have seen reason to believe, that this universe is ruled by a creator who is both wise and good. Such continuity will enable us to complete that pursuit of ideal aims, which here is most incomplete. It will render possible such enrichment of personality by goodness, beauty and truth as will lead to the perfection which alone is fit for kingdom of God."

इस का अभिप्राय यह है कि हमारे वर्तमान जीवन के सिलसिले में आगामी जीवन भी मानना चाहिये और बिना आगामी जीवन के माने हुए हमारे इस जीवन की पूर्णता नहीं हो सकती। हम ने यह सिद्ध किया है कि इस संसार को मर्यादा में रखने वाला इस का एक रचयिता है जो बुद्धिमान् भी है और नेक भी। ऐसे रचयिता की सत्ता को मानते हुए जीव के लिए आगामी जीवन मानना अत्यन्त आवश्यक है, जिस से वह अपने आदर्श की पूर्ति कर सके और अनेक जीवनों में अपनी सुन्दरता, सत्यता और पवित्रता को बढ़ाता हुआ मोक्ष पद की प्राप्ति के योग्य बन जाये।

यदि हम जीवन को इस संसार में देखें और कुदरत की मर्यादा को दृष्टि में रखें तो यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि मृत्यु न तो व्यक्ति के लिए और न जाति के लिए हानिकारक है, अपितु सबके लिए उन्नति का साधन है।

मृत्यु और आत्मघात

सांसारिक प्रेम में निराशा होने पर, कारोबार में घाटा होने पर और परीक्षा में फेल होने पर अनेक लोग घबरा कर मरने के लिए उद्यत हो जाते

हैं। साधारणतया यह देखा जाता है कि जान सब को प्यारी है परन्तु जब कोई असह्य दुःख मनुष्य को आ घेरता है तो मौत—जिस से सदैव सबको भय लगता है—जान से भी अधिक आकर्षक लगने लगती है। आत्मघात की प्रवृत्ति मनोविज्ञान की दृष्टि से एक पहेली है। इस के अन्दर एक बड़ा भ्रम काम करता पाया जाता है। यदि मनुष्य को यह निश्चित ज्ञान हो कि वह अपने कर्मों के फल से बच नहीं सकता, उसे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा—चाहे इस जन्म में या अगले जन्मों में—तो वह कभी आत्महत्या की भूल नहीं कर सकता। जिन जातियों और देशों में आवागमन के सिद्धान्त पर विश्वास है और जो जीव को अमर मानते हैं तथा इस शरीर को जीवात्मा का कर्म क्षेत्र या कर्म करने और फल भोगने का साधन मानते हैं, वे कभी आत्महत्या करने का विचार भी नहीं कर सकते। पश्चिमी देशों में भारतवर्ष की अपेक्षा आत्मघात की प्रथा बहुत प्रचलित है। उन देशों में मनुष्य बहुत कुछ पढ़े लिखे होने पर भी न आत्मा के स्वभाव को जानते हैं और न मृत्यु के रहस्य को समझते हैं। इसी लिए वे अपने आप को मार डालने को अति शीघ्र उतावले हो जाते हैं। इसी प्रकार की मनोवृत्ति का परिणाम पशुओं को अत्यन्त रोगी या व्यथित होने की दशा में मार डालने की प्रथा है जिसे वे अपनी दृष्टि में कष्टों से छुड़ा देना मानते हैं। बाह्य दृष्टि से यह ठीक भी प्रतीत होता है, परन्तु इस की तह में भी वही भूल है जो आत्मघात की वृत्ति में है।

मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपना समझता है, इस लिए उसे नहीं मारता। मनुष्यों में और पशुओं में एक जैसी आत्मा व पूर्व जन्म का सम्बन्ध न मानने से मनुष्य पशुओं को आत्मवत् नहीं देखते, इस लिए उन के साथ मनमाना व्यवहार करने को तैयार हो जाते हैं। आज संसार में मृत्यु से दुःख इसलिए होता है कि हमारा इस शरीर के साथ जो सम्बन्ध है, उस की श्रृंखला टूट जाती है। इस श्रृंखला से सब को इतना मोह रहता है कि कोई भी उस श्रृंखला में किसी प्रकार की अड़चन नहीं चाहता। मृत्यु से हमारे स्वार्थ को ठेस लगती है, इस लिए भी हम को दुःख होता है। लोग समझते हैं कि हम मरने वाले के प्रेम में रो रहे हैं, परन्तु उस प्रेम में ज्यादातर हिस्सा अपने स्वार्थ का होता है। पुत्र इस लिए रोता है कि पिता के न रहने पर कमाई कौन करेगा और निर्वाह कैसे होगा। यही हाल पति का पत्नी के देहान्त के समय होता है और इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों का समझना चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि जिसे मृत्यु का शोक कहते हैं वह शोक असल में बन्धु बान्धवों के लिए नहीं, किन्तु अपने ही स्वार्थ में बाधा पहुंचने से किया जाता है।

वृहदारण्यक उपनिषद में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को यह उपदेश कितने सुन्दर शब्दों में दिया था :—

इस संसार में पत्नी को पति, माता पिता को पुत्र, मनुष्यों को धन, ब्रह्म, क्षत्रिय, लोक, देव, जड़ तथा चेतन जगत् के पदार्थ और सजीव प्राणी सभी उसे अपनी कामना या स्वार्थपूर्ति के लिए ही प्रिय होते हैं। यदि स्वार्थ का सम्बन्ध न रहे तो कोई किसी की कामना या इच्छा नहीं करेगा।

वृहदारण्यकोपनिषद के इस पूरे प्रकरण को जो भाई-बहिन देखना चाहे उन्हें स्वयं उपनिषद का स्वाध्याय करने से लाभ पहुंचेगा।

वृहदारण्यकोपनिषद में आये उपदेश का सार यह है कि समस्त प्राणी और अप्राणी केवल अपनी ही कामना, सुख और स्वार्थपूर्ति के लिए ही मनुष्य को प्रिय होते हैं। जगत् में प्रतिदिन सहस्रों मनुष्य उत्पन्न होते और मरते हैं, परन्तु हमें न उन के पैदा होने का हर्ष होता है और न मरने का शोक। क्यों हर्ष और शोक नहीं होता? कारण स्पष्ट है कि उन के जन्म के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं होता अतः उन के जन्म से हम हर्षित नहीं होते और न ही उन की मृत्यु से हमें किसी प्रकार का शोक या दुःख होता है। सम्बन्ध और स्वार्थ साथ साथ चलते हैं। जहां सम्बन्ध और स्वार्थ है वहीं सुख और दुःख या हर्ष और शोक की अनुभूति होती है।

शरीर जीवात्मा के लिये रहने के सदन के समान है। प्राकृतिक होने से यह जीर्ण शीर्ण होता रहता है और मृत्यु के आने पर जीवात्मा के लिये त्याज्य हो जाता है। प्राकृतिक होने से शरीर काटा जा सकता है गलाया और जलाया जा सकता है, परन्तु चेतन आत्मा अनादि, अविनाशी और अमर है। गीता में स्पष्ट रूप से कहा है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥2।23

इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इस को जल गीला नहीं कर सकते हैं और वायु नहीं सुखा सकता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 2/20।

यह जीवात्मा न जन्मता है और न मरता है। आत्मरूप में सदा बना रहता है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।

सार तत्व की बातें

जीवन और मरण क्या है ? तत्वदर्शी बतलाते हैं कि शरीर और जीव का संयोग जीवन और वियोग मरण है। भक्त कहते हैं कि सत्संग जीवन और कुसङ्ग मृत्यु है। ज्ञानी कहते हैं—त्याग जीवन और आसक्ति एवं वासना मृत्यु है। परोपकार और स्वार्थ, पुरुषार्थ और आलस्य, उत्साह और निराशा, एकता और फूट, सत्य और झूठ, सदाचार और कदाचार, जीवन तथा मृत्यु के जोड़े हैं। मृत्यु से सभी लोग नहीं डरते। कर्तव्यपरायण तथा धीर पुरुष न्याय मार्ग पर चलते हैं और हर समय मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिये तैयार रहते हैं। वे आज के काम को कल पर नहीं टालते, क्योंकि कल परसों करते करते काल बली का तमांचा आ लगता है। ऐसे धीर वीर न्यायप्रिय व्यक्ति जानते और मानते हैं कि मरने पर जो अपना अस्तित्व छोड़ जाता है, उस का थोड़ा सा जीना भी सार्थक है।

स्वाभाविक मृत्यु न तो डरने की बात है, न दुःख की। जैसे अग्नि का धर्म जलाना है, पानी का धर्म शीतलता है, वैसे ही शरीर का धर्म नश्वरता है। आंधी पहले पुराने वृक्षों को गिराती है। पानी का बुलबुला नष्ट होने के लिए ही पैदा होता है, बिजली लुप्त होने के लिए ही चमकती है, फल टूटने के लिए ही पकते हैं। मनुष्य फटे पुराने मैले कपड़ों को बदल देता है। वह नित्य नये कपड़े पहनने का आदि है।

उस का शरीर भी तो जीवात्मा की एक चादर है। जब चादर जीर्ण हो जाये तो उस का बदल दिया जाना अचम्भे की बात नहीं। मरने पर कुटुम्बी लोग रोते हैं। कुटुम्ब एक वृक्ष ही तो है, वृक्ष पर अनेक प्रकार के पक्षी आ कर बैठते हैं और सवेरा होने पर इधर-उधर दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं। इस में न तो अचम्भे की बात है और न शोक की। सामान्यतया आयु सौ वर्ष की होती है। कितनी बड़ी अवधि है, जिस का अन्त ही नहीं मालूम होता। पचास वर्ष सोने में चले जाते हैं, कुछ बचपन खा लेता है, कुछ नौकरी-चाकरी, दुःख-सुख, रोग-शोक में बीत जाते हैं। यों ही सारी पूंजी खर्च हो जाती है। एक, दो, तीन, चार गिनते जाइये, बस गिनते जाइये। दिन और रात, महीने और वर्ष, बचपन और किशोरावस्था, जवानी और बुढ़ापा एक-एक कर धीरे धीरे इस खूबी के साथ कदम बढ़ाते हैं कि किसी को पता ही नहीं चलता। बस, एक दिन खेल खत्म होने का मौका आता है, नाटक का अन्तिम पर्दा गिरता है और इच्छा होने अथवा न होने पर भी चलना पड़ता है। इस लिए पहले से सचेत हो जाना बड़ा

अच्छा है। अतएव महात्मा भर्तृहरि जी के इन मार्मिक वचनों को उठते-बैठते, सोते-जागते स्मरण रखना चाहिये —

यावत् स्वस्थमिदं कलेवर गृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुष :।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य: प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यम: कीदृश: ॥

अर्थात् जब तक अपना शरीर नीरोग और पुष्ट है और वृद्धावस्था दूर है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति न्यून नहीं हुई और आयुष्य भी क्षीण नहीं हुआ है, तभी तक बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि अपने कल्याण के लिये अच्छी तरह यत्न कर ले, जब घर जलने लगे तब कुआं खोदने के उद्योग से क्या लाभ होगा ? श्री भर्तृहरि जी के इन तथ्यपूर्ण वचनों की ओर ध्यान न देने वाले को अन्त समय अश्रुपात करते हुये भी हरिन्द्र नाथ चटोपाध्याय के शब्दों में कहना पड़ेगा—

आई सांझ की वेला।
राग रंग जनघट कछु नाहीं, हुआ खत्म अब मेला ॥
गवां दिये दिन धीमे-धीमे,
नाहक निष्फल तुच्छ हंसी में,
बहुत खेल खेले तूने पर,
सच्चा खेल न खेला। आई सांझ की वेला ॥
यश तो तू ने बहुत कमाया,
दिन रहते धन बहुत जमाया,
सन्ध्या समय किन्तु जब देखा,
इक भी बचा न धेला। आई सांझ की बेला ॥
सांझ गई, अब आई राती,
न कोई संगी न कोई साथी,
पथिक हीन पथ, चला है आगे,
तू ही पथिक अकेला। आई सांझ की बेला ॥

भाई ! हमें और आपको एक दिन ज़रूर जाना है। जो मरने के बाद भी जीना चाहता है, उसे प्रतिक्षण याद रखना होगा कि उसे भी किसी दिन जाना है। जिसने बचपन में शक्ति को, जवानी में विद्या को, प्रौढ़ावस्था में नेक कमाई द्वारा अतुल धन को तथा जीवन का प्रत्येक क्षण धर्म भाव के

कमाने में लगाया है, जीवन उसी का सफल है, वही मरने का अधिकारी है, उसके लिए मृत्यु हंसी खेल है। मालिक के पास से जब बुलावे का समन आयेगा, तब उसकी तामील करनी ही होगी। जो हर समय इस निमन्त्रण के लिये तैयार रहता है, उसे मालिक के पास जाने में दुःख या कष्ट नहीं होता। जो तैयार नहीं रहता है, वह रोता है। एक क्षण की और भिक्षा मागता है, कुछ ज़रूरी कामों का करना शेष रह जाना बतलाता है, परन्तु — कालो हि दुरतिक्रमः— काल की गाड़ी एक पल के लिये भी ठहरती नहीं। काल का निशाना कभी नहीं चूकता। सब के सो जाने पर भी वह सदैव जागता रहता है। वैद्य राज दवा घोलते रह जाते हैं, पण्डित जी मृत्युञ्जय का पाठ पूरा नहीं कर पाते, लेन-देन, बही-खाते का हिसाब अधूरा रह जाता है और जीव चल बसता है। काल अपने आने के समय की सूचना नहीं देता, हमारे जाने का समय नहीं बतलाता, दुनिया को हमारी आवश्यकता है, इस की परवाह नहीं करता, रोने से पिघलता नहीं। वह न तो दयालु पिता को साथ जाने देता हैं, न प्यारी स्त्री को, न करुणाद्र माता हमें बचा सकती है, न सहोदर भाई। काल को कोई नहीं टाल सकता। दौलत और असबाव, हाथी और घोड़े, शरीर के आभूषण और दिल के अरमान को जहां का तहां छोड़ कर सांसारिक पदार्थों की दृष्टि से खाली हाथ जाना पड़ता हैं। पदार्थों का तो कहना क्या-यह शरीर जो साथ आता है यह भी साथ नहीं जाता, यहीं रह जाता है। हां, एक ऐसा मित्र है, जो साथ जाने से नहीं रुकता। वह काल के भी सिर पर बैठ कर साथ जाता है। वही है 'धर्म'। कहा भी है—

धर्मानुगो गच्छति जीव एकः

पाठक वृन्द ! मनुष्य शरीर परम पिता परमात्मा की अमूल्य देन है। यह एक पवित्र धरोहर है। इस का दुरुपयोग करना माता, पिता, आचार्य और ईश्वर को तथा स्वयं अपने को धोखा देना है। धनुष से छूटा हुआ तीर और आयु का बीता हुआ समय वापस नहीं आता। समय चूक जाने पर पश्चाताप करना वृथा है। जीवन उसी का सार्थक है, जो अपने नश्वर शरीर के द्वारा कुछ उपयोगी कार्य कर जाता है। मृत्यु समय का परम सन्तोष ही व्यक्ति के धर्माचरण का प्रबल प्रमाण है।

मृत्यु के पश्चात् के क्रिया-कर्म

प्रायः सब जातियों में किसी सम्बन्धी की मृत्यु के पश्चात् किसी न

किसी प्रकार के क्रिया-कर्म अथवा रस्म अदा करने की प्रथा प्रचलित है। हम उन प्रथाओं के बारे में भी कुछ प्रकाश डालना ज़रूरी समझते हैं—

(1) शव को दाह करने या गाड़ने की क्रिया।

(2) गृह या जहां मृत्यु हुई है उस स्थान की शुद्धि।

(3) उन मनुष्यों की शुद्धि जो रोगी को सेवा करते रहे या उस के मरणोपरान्त शव को श्मशान तक ले गये।

(4) मृतक की स्मृति में कोई पुण्य कार्य करना।

(5) मृतक की सद्गति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना।

(6) कोई रस्म या क्रिया इस विश्वास से करना कि उसका फल मृतक को मिलेगा।

(7) कोई ऐसी क्रिया करना, जिससे जीवित सम्बन्धियों का मृतक आत्मा से प्रेम का प्रदर्शन हो।

(8) मिथ्या अभिमान के कारण किसी ऐसी रस्म को अदा करना, जिस से समाज में अथवा जाति बिरादरी में ख्याति प्राप्त हो।

मृत्यु के स्वरूप के बारे में यह बता आए हैं कि हमारा सम्बन्ध दूसरे से उसी समय तक है, जब तक वह जीवित है। अर्थात् शरीर और आत्मा का संयोग बना हुआ है। इस स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए हमें ऊपर लिखी प्रथाओं पर विचार करना है। शव को आदर और सत्कार से ले जाना और उस को विधि पूर्वक जलाना अत्यन्त आवश्यक है। जलाने में इस बात की शंका रहती है कि रोग के कीटाणु मृतक शरीर में से निकल कर कहीं वायु और वातावरण को दूषित न करें। इस लिये जलाने में अच्छी सुगन्धित और कीटाणु नाशक सामग्री तथा शुद्ध घी का प्रयोग करना चाहिये। जहां तक घर की या सम्बन्धियों की शुद्धि का प्रश्न है, वह भी ध्यान में रखने योग्य है। मरे हुओं की स्मृति में दान या पुण्य का कार्य भी कर सकते हैं यथा किसी योग्य या निर्धन छात्र की सहायता अथवा छात्र-वृत्ति देना, कोई विद्यालय खोलना या कोई और जनोपयोगी काम करना। इन के अतिरिक्त जो प्रचलित प्रथायें और रिवाज हैं, जैसे—हिन्दुओं में मृतक श्राद्ध, मुसलमानों में फातहा और ईसाइयों में Sacrament—ये सब वहम की दुनियां

की चीजें हैं। यह विश्वास है कि हमारे दान या पुण्य से परलोकगत आत्माओं को लाभ पहुंचेगा या वह चीज़ें उन तक पहुंच जायेंगी, बिल्कुल मिथ्या और निराधार है। वेद-शास्त्रानुमोदित सारे कर्म-सिद्धान्त पर यह विश्वास पानी फेर देता है। हमें अपने ही कर्मों का फल मिलेगा, चाहे वे अच्छे हों या बुरे और दूसरों के कर्मों का प्रभाव हमारे ऊपर उसी समय तक पड़ेगा, जब तक हमारे अन्दर कर्म करने, कर्म से प्रभावित होने और अपने वा दूसरे के कर्मों का ज्ञान रखने की शक्ति होगी। स्पष्ट है कि यह सब जीते जी ही हो सकता है। मृत्यु के पश्चात् तो प्रभावित होना बहुत दूर की बात है, गहरी नींद में भी हमारे ऊपर दूसरे के कर्म का प्रभाव नहीं पड़ता। अच्छे से अच्छा गाना हमें गहरी नींद में सुनाई नहीं देता और न आनन्दित करता है। बड़ी से बड़ी भयानक बात भी हम को दु:खित नहीं करती और न डरा सकती है। कर्मो का फल भोग—दु:ख और सुख है। हम गहरी निद्रा की अवस्था में सुख और दु:ख दोनों की पहुंच से परे होते हैं। इन की प्रतीति जाग्रत या कुछ-कुछ स्वप्नावस्था तक होती है। अत: स्पष्ट है कि जब तक आत्मा का सम्बन्ध इस शरीर में मन, कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों से रहता है, उसी समय तक दूसरों के कर्म हमें प्रभावित कर सकते हैं। जब सुषुप्ति की अवस्था में कुछ समय के लिये हम दूसरों के कर्मों के प्रभाव से बचे रहते हैं तब मरने के पश्चात् जब हमारा शरीर से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रहेगा तो दूसरों के भले या बुरे कर्मों से प्रभावित होना कैसे माना जा सकता है। जीवन काल में अपने माता-पिता सगे सम्बन्धियों की हम जितनी सेवा कर सकें अवश्य करें। सेवा होती भी तभी है जब जिन की सेवा की जानी हैं वे विद्यमान हों, उनको सेवा की आवश्यकता हो, सेवा करने वाला विद्यमान हो, उसमें सेवा करने का पवित्र भाव मौजूद हो—इन में से एक भी बात यदि न होगी—तो सेवा जीवन रहते भी न की जा सकेगी—मरने के पश्चात् की तो बात ही अनर्गल है। हर एक विचारवान् को इन मिथ्या विश्वासों से बचना चाहिये और दूसरों को भी बचाना चाहिये।

मृत्यु सब पर सवार है

सत्यधर्ममय वेद में कहा है :—

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्

राजा-रंक, योगी-महात्मा, पापी-धर्मवान्, अमीर-गरीब सब को एक दिन जाना है। बड़े-बड़े किले, अट्टालिकाएं, सुरम्य उद्यान—सब मृत्यु देव

के एक-एक ग्रास हैं। चन्द्रमुखी स्त्रियां, प्यारा पुत्र, सुन्दर शरीर, प्रबल यौवन, सत्ता का मद, सभी काल के गर्भ में बिलीन हो जाती हैं---इस तरह विलीन हो जाती हैं कि ढूंढने पर उनका पता नहीं चलता। मुस्कराते हुए राजभवन की जगह वीभत्स-श्मशान भूमि है, प्राचीन नगरों की छाती पर घास-पात, वृक्ष, जंगल, उल्लू और सियार का राज्य है। जिस घर में बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों का शोर गुल वा कोलाहल होता था, वहां आज निस्तब्धता छायी हुई है। उत्तम कुल, अनन्त सम्पत्ति, बड़ी चतुरता, अतुल बल कोई भी एक क्षण के लिये बचा सकने में असमर्थ है। इसी लिये कहा है :—

आया है सो जायेगा राजा रंक फकीर।
कोउ सिंहासन चढ़ि चले कोउ बंधे ज़ंजीर ।।

मिलन का अन्त वियोग में होता है मुसाफ़िरखाने में देखिये, लोग अपनी गठरियां बांध रहे हैं। सब धीरे-धीरे तैयारी कर रहे हैं—कोई जान कर और कोई अनजान में।

ऐसे सर्वभक्षी मृत्युदेव को भला कौन अपने पास ठहराना चाहेगा। इसी लिये उस ने अपना घर श्मशान भूमि में बनाया है।

भेद-भाव रहित राज्य

मृत्यु की सब ये बड़ी विशेषता यह है कि उस के राज्य में भेद-भाव नहीं है। वह राजा को जितनी ज़मीन देता है, उतनी ही भिखारी को। उस की निगाह में बड़ी समानता है, उस के आगे सब बराबर हैं। ऊंच-नीच, छोटे-बड़े - सब के लिए एक ही तराज़ू है। समदर्शी मृत्यु की गोद में आजन्म के वैरी एक साथ सोते हैं। उस के राज्य में हिन्दू-मुसलमान, देशी विदेशी, ब्राह्मण-शूद्र का भेद-भाव नहीं। मृत्यु ने सब को बराबर कर दिया है। मौत के रोकने में भी सब एक समान असमर्थ है। यदि मालदार और राजा मौत से बचे रहते तो दूसरे व्यक्ति उन को राज्य शक्ति या धन शक्ति कभी न रखने देते। सब को मरना है, यह सब से बड़ी सन्तोष दिलाने वाली बात है और जो भेद-भाव से उत्पन्न होने वाले कष्ट हैं, उन को दूर करने वाली मृत्यु एक अमोघ ओषधि है।

मृत्यु एक यात्रा के रूप में

हमें अपनी मृत्यु से डर क्यों लगता है और दूसरों के मरने पर शोक क्यों होता है, यह बातें मृत्यु को एक यात्रा के रूप में मान लेने से समझ में आ सकती है। हम सब ने यात्राएं की हैं और दूसरों को यात्रा करते देखा है। साधारणतया हर एक को यात्रा करते समय एक चिन्ता सी रहती है और यात्रा की समाप्ति पर एक खुशी सी होती है। परन्तु कभी-कभी इस के विपरीत भी होता है। ऐसा कब होता है इसी पर विचार करना है। यह निम्नलिखित दशाओं में होता है:—

(1) जब यात्री के पास टिकट न हो।

(2) जब यात्री को यह न मालूम हो कि कहां उतरना है।

(3) जब यात्री को अपने साथ यात्रा करने वाले से अनुचित मोह हो गया हो।

(4) जब यात्री को यह अनुभव हो कि वह यात्री जो उस को सुख और आराम पहुंचाता रहा था, उस से पहले यात्रा समाप्त कर के चला गया है।

(5) जब यात्री के लिए घर पर सुख न हो और चिन्ताओं से छुटकारा चलती रेल में ज्यादा मिलता हो।

यदि हम इन सब बातों से दूर रहें तो हम को जीवन रूपी यात्रा में, जिस में मृत्यु एक स्टेशन या गाड़ी बदलने का जंकशन है—हम को मृत्यु का दुःख नहीं होगा और न इस जीवन से अनुचित मोह रहेगा। जिन्होंने कर्त्तव्य कर्म कर के टिकट खरीद लिया है, वे यात्रा की समाप्ति से नहीं डरते और न टिकट देखने वाले के आने का या फाटक पर खड़े रहने वाले टिकट कलक्टर का उन को डर रहता है। केवल कर्त्तव्य का पालन न करने वाले बे टिकट के यात्री ही यात्रा की समाप्ति से डरते हैं। जो जीव के इस शरीर के सम्बन्धों को एक रेल की यात्रा समझते हैं, वे न तो जीवन से व्यर्थ मोह करते हैं, न मृत्यु से अनावश्यक भय। जिस प्रकार रेल गाड़ी बराबर चलती रहती है और किसी निमित्त से ही ठहरती है, इसी प्रकार शरीर धारी आत्मा को इस शरीर रूपी रेल गाड़ी में रहते हुए कर्म करना पड़ता है। जाग्रत अवस्था उस के चलने का समय है, घोर निद्रा या सुषुप्ति उस का विश्राम है और मृत्यु उस की यात्रा का नवीनीकरण अर्थात् पहली यात्रा की समाप्ति और

नवीन यात्रा का आरम्भ है । इस जीवात्मा के लिए मोक्ष रूपी स्टेशन बहुत आनन्ददायक है। इस अवस्था में वह चलती गाड़ी की आवाज़ और गाड़ी बदलने की चिन्ता से मुक्त हो जाता है। यह एक ऐसा Waiting Room है जिस में ठहरने का आनन्द तो है परन्तु स्टेशन की झण्झट नहीं है।

मृत्यु जीते जी भी

कोई यह न समझे कि मृत्यु मरने पर ही हो सकती है, जीते जी भी मृत्यु होती है। जिस का सभी जगह अपयश होता है, वह जीते में भी मरा है। कलङ्की का जीना ही तो मरना है। एक महात्मा का कथन है कि कायर और डरपोक बिना मौत के मर जाता है। दरिद्रता मृत्यु का एक दूसरा नाम है। गुसाईं तुलसी दास जी ने साफ़ शब्दों में कहा है कि शराबी, कामी, कृपण, मूर्ख, अत्यन्त दरिद्र, यशहीन, अतिवृद्ध, सदा रोगी, सतत क्रोधी, ईश्वर विमुख, सदाचारी विद्वानों अर्थात् देवों और साधुओं से शत्रुता करने वाला, अपने ही शरीर को पालने वाला (उदरम्भर) निन्दक और पापों का प्रिय वेद की भाषा में द:शंस ये चौदह प्रकार के प्राणी जीते जी मृतक के समान है। सत्कर्मों के साथ क्षण भर का जीना भी श्रेष्ठ है। दोनों लोक अर्थात् शरीर और आत्मा को बिगाड़ने वाला दुष्कर्म करते हुये लम्बा जीवन किसी काम का नहीं।

जिस तरह आदमी जीते जी मुर्दा हो सकता है, उसी तरह वह शरीर त्यागने पर भी जीवित रह सकता है। धर्म देश और जाति पर बलिदान होने वाले, सत् कर्म और लोकोपकार में रत रहने वाले सदा जीवित रहते हैं। कहा भी है—

मरना भला है उस का जो अपने लिए जिये।
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिये॥

क्रूर काल सब को खा जाता है, परन्तु वह सत्कर्म, धर्माचरण और यश को नहीं खा सकता। कीर्ति अविनाशिनी है। इसी लिये प्राचीन भारत-वासी किसी प्रकार के स्मारक नहीं बनाते थे। वे जानते थे कि काल स्मारक को भी खा जाता है। वे केवल सत्कर्म करना, यज्ञीयभाव का विस्तार करना और सबसे प्रीतिपूर्वक सद्व्यवहार करना जानते थे और इन पवित्र भावनाओं और सच्चे गुणों को ही स्मारक समझते थे। यथार्थ में मृत व्यक्तियों के सद्गुणों की चर्चा और उन के पाद चिन्हों पर चलना ही उन का वास्तविक

स्मारक है। जो पुतले और समाधि के चबूतरे जीवित जन-समुदाय के लिए कोई संदेश नहीं रखते, उन को तैयार कराने वाला धन और परिश्रम सब व्यर्थ हैं। हम देख रहे हैं कि आज समाधियों पर तो पुष्प चढ़ाए जाते हैं, कब्रों और मज़ारों की पूजा की जाती है, परन्तु जिन महान् आत्माओं के नाम पर इन्हें बनाया गया है, उनके जीवनादर्शों की ओर कोई झांकने को भी तैयार नहीं। एक पश्चिमी उक्ति है कि "जनता की स्मरण शक्ति अस्थायी होती है। अतएव अपनी विस्मृति शीलता का प्रायश्चित उस ने महापुरुषों के स्मारक बनाने की प्रथा को जन्म दे कर किया है।"

मृत्यु और क्रियात्मक जीवन

मृत्यु का स्वरूप समझ लेने से और इस विश्वास से कि मरने के पश्चात् जीवात्मा को पुनः पुनः कर्म करने का अवसर मिलेगा, मनुष्य के आचरण और क्रियात्मक जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

(1) मृत्यु का स्वरूप समझ लेने से मौत का डर जाता रहता है और जिन को यह विश्वास है कि जीव अमर है और यह शरीर पुराने मकान या कपड़े की भांति छोड़ देने योग्य है, वे मरने से न डरते हुए बड़े से बड़े वीरता के कार्य को उद्यत रहते हैं। कायरता उन को छू नहीं सकती। उनका जीवन सदा वीरता के भावों से भरा रहता है।

(2) मृत्यु के स्वरूप का ज्ञान हमें आशावादी बनाता है।

(3) हमें कर्म करने तथा सदाचारण की ओर प्रवृत्त करता है, क्योंकि कर्मफल भोगने का विचार हमारे सम्मुख रहता है।

(4) मृत्यु का स्वरूप हमें सच्चे साम्य भाव की शिक्षा देता है। मरने में राजा-रंक, अमीर-गरीब सब बराबर हैं।

(5) मृत्यु से हमारा प्राणिमात्र से सम्बन्ध निश्चित हो जाता है। यह धारणा दृढ़ हो जाती है कि हमारे जैसी आत्मा ही सारे प्राणियों में निवास करती है। इस प्रकार सार्वजनिक प्रेम का विस्तार हो कर 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' वाली बात चरितार्थ होती है।

(6) मृत्यु को समझ लेने पर हमें इस संसार के बड़े से बड़े दुःख भी भयभीत नहीं कर सकते।

(7) मृत्यु का स्वरूप जान लेने से हमारे अन्दर से हिंसा के भाव निकल जाते हैं। मृत्यु की पहेली सुलझ जाने से आत्मघात की प्रथा जाती रहती है।

हम मृत्यु से क्यों डरते हैं ?

ऊपर जो मृत्यु के स्वरूप की विवेचना की गई है उस को ध्यान में रखने वाले को मृत्यु से कभी भयभीत न होना चाहिए, परन्तु इतनी बात समझ में आने पर भी हमारे अन्दर से मौत का भय क्यों दूर नहीं होता ? इस के कारण निम्नलिखित हो सकते हैं।

(1) मृत्यु के स्वरूप को ठीक ठीक न समझना, मृत्यु परिवर्तन का नाम है और परिवर्तन से एक स्थायी सत्ता सिद्ध होती है।

(2) जीव और शरीर के सम्बन्ध को न समझना अथवा शरीर से अनुचित मोह।

(3) जीवात्मा का अन्य प्राणियों से सम्बन्ध ठीक ठीक न समझना। यदि यह हम ध्यान में रखें कि हमारा अन्य प्राणियों से सम्बन्ध जीव और शरीर के संयोग तक ही है तो हम मौत से न डरेंगे और न उन के वियोग में रोयेंगे।

(4) संसार के पदार्थों से अनुचित मोह तथा उनके साथ अपना ठीक सम्बन्ध न समझना। संसार परिवर्तन शील है, हमारे भोग्य पदार्थ केवल उपयोग में लाने के लिये हैं न कि सदा साथ रखने के लिए।

(5) ईश्वर के स्वरूप को न समझना और ईश्वर की दयालुता एवं न्यायप्रियता में विश्वास न रखना।

(6) हमारा कर्त्तव्य पालन न करना और पाप का फल मिलने से डरना। वही विद्यार्थी पाठशाला जाने से डरता है जिसे पाठ याद न हो या जिस ने स्कूल का काम न किया हो।

(7) जिस ने अन्य प्राणियों को जीवन में सताया है वह उन से बदले में सताये जाने से डरता है।

(8) यह भूल जाने से कि मृत्यु दुःखों से छूट जाने का परिणाम है।

(9) यह भूल जाने से कि यदि मृत्यु न होती तो जीवन नीरस और अत्यन्त कष्टप्रद रहता। मृत्यु के विचार ने ही जीवन से प्रेम करना सिखाया है।

श्मशान में वैराग्य

यह प्रायः देखा गया है कि जब कभी हम लोग किसी शव को ले कर दाह कर्म करने के लिए श्मशान-भूमि में ले जाते हैं तो मार्ग में जाते हुए बड़े वैराग्य की बातें करते हैं। "यह संसार कुछ नहीं है, सब को मरना है। एक दिन सब को यहीं आना है, कोई किसी का नहीं है, ऐसी बातें सब की जबान पर होती हैं। पर घर आते-आते सब भूल जाते हैं। यह बात ठीक नहीं है। यदि हम मृत्यु के स्वरूप को ठीक ठीक समझ लें तो हमारे अन्दर सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाय और फिर वैराग्य के विचार सदैव बने रह सकते हैं। राग कोई बुरी चीज नहीं और न झूठा और कोरा वैराग्य जीवन का आदर्श है। संसार के पदार्थों के प्रति उचित और सीमित राग हमें कर्म करने के लिए उत्साहित करता है। जो लोभ और मोह में फंसे हुए हैं, उन के लिए वैराग्य की आवश्यकता है। अनुचित वैराग्य ने भारतवर्ष में उदासीनता उत्पन्न कर दी है और हट्टे-कट्टे उदासी नामधारी वैरागी साधु अपने कर्त्तव्य धर्म का पालन न करते हुए भार रूप बने हुए हैं। कहने को तो वे यह कहते हैं कि 'ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा' परन्तु अपने बसेरे के लिए बड़े-बड़े मठ और महल बनवाये हुए हैं। नाम के लिए वैरागी परन्तु बेचारे गृहस्थों से भी अधिक लोभ, मोह और असन्तोष में फंसे हैं। हम सब को यह ध्यान रखना है कि सदा अनुचित और आवश्यकता से अधिक वैराग्य के भाव हृदय में भरे रहना और अपने हृदय मन्दिर को श्मशान बनाये रखना ठीक नहीं है और न अनुचित राग और विलासिता ही ठीक है। मृत्यु के समय शोकातुर और उदासीन होने की आवश्यकता नहीं, कर्त्तव्यपरायण होने की आवश्यकता है। मृत्यु दुनिया को घटिया या निकम्मी सिद्ध नहीं करती, परन्तु इस सृष्टि के सञ्चालक पर ब्रह्म परमेश्वर की महती शक्ति की याद दिलाती है और उसकी सत्ता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता को सिद्ध करती है। दूसरे की मृत्यु को देख कर हमें अपनी आने वाली मृत्यु का ध्यान आना स्वाभाविक है, परन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं कि हम बिना आयी मौत ही मरने लगें और हाथ पैर ढीले कर

बैठ जाएं। मृत्यु के याद आने पर हमें यह बात ध्यान में लानी चाहिए कि हम को अपने जीवन का कार्यक्रम अतिशीघ्र पूरा करना है, क्योंकि समय बहुत थोड़ा और अनिश्चित है। कूच का नक्कारा बजने पर चलने वाले को जल्दी जल्दी पैर उठाने की आवश्यकता है। हाथ पैर फुला कर बैठ जाना और घबरा कर अपने साथियों—साथ के यात्रियों से पीछे रह जाना मूर्खता और कायरता है। श्मशान हमें अपने जीवन का मूल्य बताता है और जीवात्मा के विशुद्ध स्वरूप का स्मरण कराता है। जो भाव श्मशान में जाने से हमारे हृदय में उत्पन्न होते हैं यदि वे एक उचित मर्यादा के भीतर हमारे अन्दर सदैव बने रहें तो हमारा जीवन सफल हो सकता है। यह दुनिया हेय नहीं उपादेय है, यह मिथ्या और दुःखों का घर नहीं, अपितु हमारे लिए कर्म करने और कृत कर्मों का फल भोगने के लिए बनाई गयी है। इस लिये हमारा ध्यान सदा शुभ कर्मों के करने और अशुभ कर्मों से बचने की ओर ही रहना चाहिए। क्या ही अच्छा कहा है :—

दुनिया यह कर्म क्षेत्र है कोई सैरगाह नहीं।
जब तक है जान तन में प्रभु को भुला नहीं॥

मृत्यु संसार में सब से ज्यादा भय और दुःख की चीज़ समझी जाती है, बल्कि संसार में जिन कारणों और घटनाओं को दुःख माना जाता है, वे भी दुःख इसी कारण से हैं क्यों कि उन का मृत्यु से सम्बन्ध है। हम बीमारी से डरते हैं, हम रेल की दुर्घटना या भूकम्प से भयभीत होते हैं, वह इसी लिए कि इन से मौत का डर रहता है। जिन को मौत का डर नहीं रहता, उन के लिए संसार के सब दुःख-सुख एक समान हो जाते हैं। एक साधारण आदमी ज़रा सी चोट लग जाने से व्याकुल हो जाता है। एक वीर पुरुष शरीर का एक अंग कट जाने पर भी उफ तक नहीं करता। ऋषि दयानन्द जिस भयंकर रोग से पीड़ित थे, यदि वैसा रोग किसी साधारण मनुष्य को होता, तो वह बहुत बेचैन और व्याकुल रहता, परन्तु ऋषि दयानन्द उस असह्य वेदना से पीड़ित होते हुए भी ईश्वर-भक्त और शान्त चित्त रहे, यह इसीलिए कि उन्हें मृत्यु से भय न था।

यूनान के महान् विचारक सुकरात और उन के मित्र क्रीटो के बीच में जो वार्तालाप हुआ वह प्रगट करता है कि महापुरुष मृत्यु के सन्मुख भी कितने शान्त और समाहित होते हैं।

सुकरात—क्रीटो, तुम इस समय क्यों आए हो ? अभी तो बहुत सवेरा है ?

क्रीटो—हां—बहुत सवेरा है ।

सुकरात—तुम बिना बोले क्यों बैठे रहे, तुम ने मुझे क्यों नहीं जगाया ?

क्रीटो—हे सुकरात ! निश्चय पूर्वक मैं भी इच्छा करता हूं कि मैं भी इसी प्रकार शोक के बिना और बिना निद्रा के न होता । मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आप कितनी निश्चिन्तता से सो रहे थे ।

यह वार्तालाप उस समय हुआ जब सुकरात को कुछ घंटों के पश्चात् विष दिया जाना था ।

इस प्रकार के महा पुरुष हंसते-हंसते मृत्यु का सामना करते रहे । उन सब के मुख से इन शब्दों की गुञ्जार हुआ करती थी कि—

ऐ मौत मत डरा मुझे, मुझ को फना नहीं,
चलने का मुझ पे नाम को जादू तेरा नहीं ।

कुछ इब्तदा नहीं है मेरी इन्तहा नहीं,
मैं वो हूं मुझ से छेड़ की लेना बजा नहीं ।

तेरी रसाई जिस्म से आगे ज़रा नहीं,
हां जिस्म तेरा माल है वेशक मेरा नहीं ।

श्मशान तेरी आग मुझे कब जला सके ।
आगोश-ए-कब्र गोद में क्योंकर दबा सके ।

(श्री मुंशी तिलोक चन्द महरूम)

शरीर पतन शील है

तव शरीरं पतयिष्णवर्वन् तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान् ।
तव श्रृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ।। य० 29/22

हे (अर्वन्) जीवात्मन् (तव शरीरं पतयिष्णु) तेरा शरीर पतनशील नाशवान् है । (तव चित्तम् वातः इव ध्रजीयान्) तेरा चित्त वायु के समान चंचल है (तव) तेरी (जर्भुराणा) अत्यन्त पुष्ट (श्रृंगाणि) इन्द्रियां (पुरुत्रा)

बड़े बड़े (अरण्येषु) जंगलों में—विषय वनों में (विष्ठिता) स्थित हुई (चरन्ति) विचरती है।

वेद कल्याणी माता की भान्ति जीव का उद्धार करने के लिये अनेक प्रकार से प्रबोध के उपाय प्रस्तुत करता है। कहीं से "ध्रुवं ज्योति": कह कर मृत्यु के भय से मुक्त कराता है। कहीं इस के शरीर अनित्यता का वर्णन करके संसार की असारता दिखा इसे मोह पाश से छूटने की प्रेरणा करता है। इस मन्त्र में शरीर के नाशवान् होने का ज्ञान कराने के लिए कहा—तव शरीरं पतायिष्णवर्वन=हे आत्मन् ! तेरा शरीर पतनशील है। इस शरीर का स्वभाव ही पतन है—नाश है। स्वभाव के सम्बन्ध में ऋषियों का मत है—स्वभावो ह्यनपायी वै=स्वभाव तो नहीं बदलता, जब स्वभाव नहीं बदल सकता, तब एक दिन अवश्य ही इस का नाश होगा, भले ही पर्याप्त दीर्घ काल तक शरीर बना रहे, किन्तु इसका सदा बना रहना सर्वथा असम्भव है। अत: ज्ञानी जन शरीर में एकान्त रति नहीं करते, वरन् उदास हो जाते हैं। शरीर के साथ लगा मन तो सब से चंचल है। वेद में अनेक स्थानों पर उसे "जविष्ट" कहा है। यहां भी उसी प्रकार कहा गया है कि वह - वात इव ध्रजीयान्=वायु की भांति चंचलतर है। शरीर पतनशील है, सदा संग रहने वाला नहीं है। मन भी चंचल है, सदा इधर-उधर भागता रहता है, अर्थात् ये दोनों विश्वास योग्य नहीं हैं। जाने, कहां और कब संग छोड़ दें। बुद्धिमान् मनुष्य इस रहस्य को जान कर इससे सिद्ध होने वाले कार्यों को शीघ्रातिशीघ्र सम्पादन करते हैं।

क्या इन्द्रियां आत्मा को पूरा सहयोग दे रही हैं ? वेद इस का समाधान अद्भुत ढंग से करता है—

तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति।

तेरी इन्द्रियां अनेक जंगलों में स्थित हो कर पुष्ट हुई विचरती हैं, अर्थात् इन्द्रियां भी आत्मा से विमुख होकर विषय-वनों में विचर रही हैं।

उपनिषद् ने कहा —इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्। (कठ)

ज्ञानी जन इन्द्रियों को घोड़े मानते हैं और विषयों को उनके चरने का स्थान। उपनिषत् के गोचर को वेद ने अरण्य—जंगल कहा और कहा कि वे पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति=अनेक जङ्गलों में पुष्ट हुई विचरती हैं या चर रही हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का विषय पृथक्-पृथक् है। नेत्र का रूप,

अनेक प्रकार का है। रसना का विषय रस है। रस भी नाना हैं। घ्राण—नाक का विषय गन्ध है, गन्ध भी अनेक विधि हैं। कान को शब्द बांधता है, शब्द के भी विविध भेद हैं । त्वचा को सुख देने वाला स्पर्श भी एक प्रकार का नहीं है। फिर मन के विषयों का परिशीलन मन की भान्ति दुरुह है। इन्द्रियां अपने अपने विषयों को ही ग्रहण कर सकती हैं, इस बात को कहने के लिये 'विष्ठिता' विशेषण पद का प्रयोग हुआ है और अतएव नाना वनों की सत्ता का निर्देश हुआ है।

आत्मन् ! तेरा इन में कोई भी पक्का साथी नहीं।

संसार की अनित्यता

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गो भाज ऽ इत्किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ।। यजु० 35/4

(अश्वत्थे) अश्वत्थ पर (वः) तुम्हारा (निष्दनम्) बैठना है। (पर्णे) पत्र पर (वः) तुम्हारा (वसति कृताः) वास बना हुआ है। यदि (पुरुषम्) पुरुष को—परमात्मा को (सनवथ) पूजो तो (किल) अवश्यमेव (गोभाजः) गोभागी हो जाओ।

मनुष्य संसार में आ कर समझता है कि मुझे सदा यहीं रहना है। युधिष्ठिर से यक्ष ने पूछा था इस संसार में सब से बड़ा आश्चर्य क्या है ? युधिष्ठिर महाराज ने जो उत्तर दिया वह उस समय भी सत्य था, इस समय भी सत्य है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम्।
शेषः स्थावरतां यांति किमाश्चर्यमतः परम् ।।

प्रतिदिन प्राणी मौत के घाट उतर रहे हैं किन्तु शेष स्थायी रहना चाहते हैं, इस से अधिक आश्चर्य क्या है ?

अपने हाथों लोग अपने बन्धु-बान्धवों को जला आते हैं किन्तु उन्हें यह कभी विचार नहीं आंता कि हमारा भी निस्तारा कभी ऐसा ही होगा।

संसार के किसी पदार्थ में स्थिरता है ही नहीं। फिर यहां स्थिरता की कामना कैसी ? तुम्हें ज्ञात है, तुम्हारी बैठक—कहां है ?

अश्वत्थे वो निषदनम् =अश्वत्थ पर तुम्हारी बैठक है। 'अश्वत्थ' का अर्थ है—**यः श्वो न स्थास्यति सः** = जो कल न ठहरेगा । तुम सोच रहे हो, अमुक कार्य हम कल करेंगे, किन्तु तुम कल देख पाओगे, कल तक रह भी पाओगे । इसका क्या प्रमाण ? तुम्हारा निषदन - ठिकाना तो अश्वत्थ पर है । अश्वत्थ का एक अर्थ पीपल वृक्ष है। पीपल को लौकिक संस्कृत में चलदल भी कहते हैं । चलदल का अर्थ है चंचल पत्तों वाला। पीपल के पत्ते प्रायः हिलते रहते हैं । मानो वे अस्थिरता की घोषणा कर रहे हैं ।

तुम्हारा वास स्थान ? पर्णे वो वस्तिष्कृता पत्ते पर तुम्हारा वास है । पत्ते का स्वयं अल्प जीवन होता है । जाने कब वायु का झोंका आये और पत्ता नीचे गिर जाए । जाने कब कोई पत्ता सूख जाए। जो स्वयं क्षणभंगुर है, उस पर आश्रय करने का लाभ ?

कितने सरल किन्तु मार्मिक शब्दों में संसार की असारता का बोध कराया है । परन्तु संसार की इस असारता का ज्ञान जीव को कब होता है ?

गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पुरुषम्

जब पूर्णपुरुष—जगदाधार—सर्वव्यापक—सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की उपासना करता है तब जीव गोभागी -प्रकाश का सत्यज्ञान का अधिकारी बनता है तभी उसे संसार की अनित्यता और परिवर्तनशीलता का बोध हो कर उसका विवेक जागृत होता है। जिस से सदसद विवेक की प्राप्ति और खरे खोटे का ज्ञान हो सके, उस परमात्मा की उपासना सदा करनी चाहिए । तभी शरीर के साथ, जगत् के साथ और जगत्पति के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है और हमें इस सम्बन्ध को किस प्रकार निभाना है, इसका बोध होगा ।

मृत्यु से भयरहित होने का ढंग बताने वाले कुछ वेद मन्त्र

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देव यानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥
(ऋ. 10–18–1)

अर्थ—हे (मृत्यो) मौत ! (देवयानात् इतरः) देव मार्ग से दूसरा (ये ते स्वः) जो तेरा अपना मार्ग है, (तं पन्थां) उस मार्ग से (अनुपरेहि) दूर चले

जाओ, (चक्षुष्मते) आंख वाले और (श्रृण्वते) सुनने वाले (ते ब्रवीमि) आप से मैं कहता हूं (नः प्रजा) हम सब की प्रजा को (उत वीरान्) और विशेषतः वीरों को (मा मारीरिषः) मत नष्ट करो।

भावार्थ—देवमार्ग पर चलने से अर्थात् श्रेष्ठों के चाल चलन के अनुकूल अपना चाल चलन करने से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। जो आंख से देख सकते हैं और कान से सुन सकते हैं, उनको चाहिये, कि वे अपना और अपनी प्रजा का श्रेष्ठ आचरण के द्वारा अपमृत्यु से संरक्षण करें। सब का रक्षण होना चाहिये, परन्तु विशेषतः वीरों की आयु अवश्य ही दीर्घ होनी चाहिए।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना।
आप्यायमानः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥

अर्थ—(मृत्योः पदं योपयन्तः) अपने ऊपर आये हुए मृत्यु के पांव को पुरुषार्थ से परे ढकेलते हुए (द्राघीय आयुः) अपनी दीर्घ आयु को (प्रतरं) अधिक दीर्घ बना कर (दधाना) धारण कर के (यदा एत) जब तुम सब चलोगे, तब (प्रजया धनेन) प्रजा और धन के साथ (आप्यायमानाः) अभ्युदय को प्राप्त होते हुये (शुद्धाः) बाहर से शुद्ध (पूताः) अन्दर से पवित्र और (यज्ञियासः) पूजनीय (भवत) बनोगे। ऋ० 10 18–2

भावार्थ—हर एक प्राणी पर तथा हर एक पदार्थ पर मृत्यु का पांव रखा रहता है। मनुष्य ही उसको परे धकेल देता है, अन्य प्राणियों में से कोई भी ऐसा नहीं है, कि जो इस प्रकार का पुरुषार्थ कर सकता हैं। सदाचार से अपनी आयु बढ़ जाती तथा दुराचार से घट जाती है, यह नियम ध्यान में रख कर हर एक मनुष्य को अपनी आयु बढ़ाने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥

(ऋ० 10 - 18 - 4)

अर्थ—(जीवेभ्यः) जीवित मनुष्यों के लिए (इमं परिधिं) इस सौ वर्ष की आयु की मर्यादा को (दधामि) करता हूं। (एषां) इन में (अ-परः) कोई भी नीच बन कर (एतं अर्थम्) इस जीवन धन को (नु मा गात) न छोड़े। सब

मनुष्य (पुरूची:) बड़े (शतं शरद:) सौ वर्ष (जीवन्तु) जीते रहें और (मृत्युं) मृत्यु को (पर्वतेन) पालन पूरण—प्रीणन के नीचे (अन्तदर्धतां) दबा लें।

भावार्थ—मनुष्यों की साधारण आयुष्य मर्यादा सौ वर्ष की है। नीच आचरण न किया जाय, तो इस से पहले मृत्यु नहीं होगी, दुराचार करने से ही शीघ्र मृत्यु हो सकती है। पुरुषार्थ से मृत्यु को दबा कर मनुष्य अपनी आयु बढ़ा सकते हैं।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इहत्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घं आयु: करति जीवसे व: ॥

ऋ० 10-18—6

अर्थ—(आ रोहत) उन्नति कीजिये (जरसं आयु:) जरायुक्त अतिदीर्घ आयुष्य (वृणाना:) सम्पादन कीजिये। (यतिष्ठ) जितने भी आप हैं, वे सब (अनु-पूर्वं) पूर्व के अनुसार (यतमाना:) पुरुषार्थी बनिये। (सु-जनिमा) उत्तम जन्म देने वाला (स-जोषा:) सन्तोष के साथ जीवन व्यतीत करने वाला (त्वष्टा) कारीगर, कुशल, कर्म कर्ता (इह) इस संसार में (व: जीव से आयु; करति) आप के जीवन के लिये आयु बनाता है।

भावार्थ—पुष्ट होना, दीर्घायु की प्राप्ति का उपाय करना, सतत पुरुषार्थ करना, समान प्रीति के साथ जीवन व्यतीत करना, हुनर और कुशलता प्राप्त करना, उत्तम सन्तान उत्पन्न करना, ये उपाय हैं, जिन से दीर्घायुष्य होता है। 'अनु-पूर्व' शब्द से 'आयु के अनुसार' अर्थात् आयु से बड़ा पहले और उस के पश्चात् उस से कम उमर वाला मरे। छोटी उमर वाला पहले न मरे यह भाव व्यक्त होता है।

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङात्वा हरामि शत शारदाय।
अव मुञ्चन् मृत्यु पाशानशस्तिं द्राघीय आयु: प्रतरं ते दधामि ॥

अ० 8—2

अर्थ—(जीवतां ज्योति:) जीवित लोगों के तेज के (अभिएहि) पास जाओ। तुम को (शत शारदाय) सौ वर्ष की दीर्घायु तक (आहरामि) चलाता हूं। (मृत्युपाशान्) मृत्यु के पाशों को तथा (अशस्तिं) अप्रशस्तता को दूर कर के (ते द्राघीय आयु: दधामि) तेरे लिये दीर्घ आयु अर्पण करता हूं।

भावार्थ—जीवित और जागृत लोगों के पास रहना चाहिये और निन्दनीय भावों को दूर करना चाहिए । ये दो उपाय हैं कि जिस से दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है । उत्साही पौरुष का जीवन व्यतीत करने वाले लोग जीवित मनुष्य कहलाते हैं । इन के तेज के साथ रहने, इन का सत्संग करने तथा इनकी जीवन चर्या को अपनाने से अपने अन्दर भी उत्साह आ जाता है तथा उनके अनुसार अपना जीवन बनाने से व्यक्ति अपने जीवन को नियमित बना लेता है । उत्साह एवम् ऋत् का आचरण ही जीवन का स्त्रोत है । दूसरी बात निन्दनीय हीन भावों को दूर करना है । हीन भावों को धारण करने से मन दूषित होता है और मन के दोषयुक्त होने से अल्पायु होती है ।

यम दूत और यम पाश

ऋणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यम दूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥

अ० 8—2—11

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि ॥ अ० 8—2—12

अर्थ—तेरे लिए मैं प्राण और अपान (जरां मृत्युं) वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु, दीर्घायुष्य, (स्वस्ति) आरोग्य देता हूं । वैवस्वत यम से भेजे हुए यमदूतों को मैं (अपसेधामि) दूर करता हूं । (अरातिं) ईर्ष्या, द्वेष, द्रोह, कृपणता (निर्ऋतिं) रीति और विधि के विरुद्ध आचारण (ग्राहिं) बड़ी देर तक चलने वाली बीमारी, (क्रव्यादः) मांस को क्षीण करने वाले रोग, (पिशाचान्) रक्त खाने वाले रोग बीज, (रक्षः क्षरः) क्षय उत्पन्न करने वाले रोग बीज, (दुर्भूतं) बुरी रीति से रहने का अभ्यास आदि जो कुछ है उसको मैं दूर करता हूं, जैसे प्रकाश अन्धकार को दूर करता है ।

भावार्थ—उक्त रीति से व्यवस्था करने पर दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है । इस मन्त्र ने यम के पाश और दूत कौन है, इसका भी निर्णय कर दिया है । ईर्ष्या, द्वेष प्रभृति ही यम दूत और यम के पाश हैं । ये अपने ही बुरे आचरण और व्यवहार से उत्पन्न होते है । जो मनुष्य दीर्घायु और आरोग्य

प्राप्त करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे इन बुराइयों को प्रथम दूर करें। यमदूत और यमपाश दूर किये जा सकते है। मन्त्र में स्पष्ट कहा है—

सर्वान् यमदूतान् अप सेधामि

सब यमदूतों को रोग के कीटाणुओं तथा असद्भावों को मैं दूर कर देता हूं। पुरुषार्थी और संयमी व्यक्ति उनको योगादि साधनों से दूर कर सकता है और प्रयत्न से आरोग्य और दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। मृत्युपाशों और यमदूतों को दूर करने के लिये धार्मिक आचरण और योग साधन ये उपाय हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत

ब्रह्मचर्य के तप से देव—संयमी, चरित्रनिष्ठ-प्रभु के सच्चे उपासक और सच्चे साधक, परोपकार प्रिय व्यक्ति मृत्यु को दूर हटाते हैं। इस प्रकार का सच्चा संयमी वेद के शब्दों में डंके की चोट कहता है—

"तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि"। अ० 6/133/3

मैं ज्ञान, तप, परिश्रम आदि से तथा इस मेखला से मृत्यु को बांधता हूं। अर्थात् अन्य असंयमी जन मृत्यु के आधीन रहते हैं और सत् पुरुष मृत्यु को अपने आधीन करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आप डर जायेंगे तो मृत्यु आप को खा जायेगी और निडर बनेंगे तो मृत्यु आप के आधीन रहेगी। इसलिये धैर्य के साथ प्रशस्ततम कर्म करने में अपने आप को समर्पित करना चाहिये और इस अर्पण से मृत्यु को वश में करना चाहिये।

"उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुंचमानः"
पुरुष, अतः उत्क्राम। मा अव पत्था। मृत्योः पड्वीशं अव मुंचमानः॥
अ० 2/1/4

हे मनुष्य! इस अवस्था से ऊपर उठो, मत गिर जाओ। मृत्यु के पाशों को तोड़ दो।

कितना प्रेरणाप्रद और शक्ति-वर्धक उपदेश है। इस प्रकार का बल जिस मन में होगा वह मन निश्चय से मृत्यु को हटा सकता है। हे वैदिक धर्मी सज्जनो! मन में यह बल धारण करो, अपने आप को हीन और दीन न समझो। तुम्हारे अन्दर मृत्यु के पाशों को तोड़ने की शक्ति है, उसका उपयोग करो और सब प्रकार का अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करो।

मा मृत्योः उदगात् वशम् ॥ अ० 19-27-8

(मृत्यु के आधीन मत होवो)

उदेहि मृत्युगंभीरात् कृष्णच्चित्तमसस्परि ॥ अ० 5-30-11

जिस प्रकार अन्धेरा छोड़ कर ऊपर प्रकाश में आते हैं, उस प्रकार गहन मृत्यु से ऊपर उठो।

मा पुरा जरसे मृथाः ॥

अत्यन्त वृद्धावस्था से पूर्व मत मरो ॥

उद्‌बोधन

जा के आता रहा आ के जाता रहा।
यों ही चक्र चौरासी के खाता रहा।
इसी आवागमन के उलट फेर में।
वक्त का हीरा हाथों गंवाता रहा ॥

खेल में तेरी बचपन कहानी गयी।
जोश में होश खो कर जवानी गयी।
बाद में यूं जिया बूढ़ा हो कर जिया।
तेल के बिन दिया टिमटिमाता रहा ॥

जब उमर का सफर खत्म होने लगा।
बैठ मंजिल के नज़दीक रोने लगा।
तब कहा पगले मन, यह है श्वासों का धन।
क्यों तू अय्याश बन कर गंवाता रहा ॥

घर के हाथी व सब साथी घोड़े यहां
और नोटों के बण्डल जो जोड़े यहां
''नत्था सिह' जब ये सामान छोड़े यहां
तलियां मल मल के तब तिलमिलाता रहा ॥

जा के आता रहा, आ के जाता रहा।
यों ही चक्र चौरासी के खाता रहा ॥

मृत्यु की वास्तविकता के विषय में कुछ प्रसिद्ध श्लोक

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्म वर्जितम् ।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घ जीवी न संशयः ॥

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् ।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं गमिष्यति ।
अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरे धनयौवने ।
अस्थिराः पुत्रदाराश्च धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र दारा न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एको नु भुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठ लोष्ठ समं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
भार्या गृह द्वारि जनः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोक मार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

धर्म मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोक गतस्य बन्धुः

अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरप्रि सेव्यमाना
नवाप्त भावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

—भगवद्गीता

दोहे तथा शेयर

इक दिन ऐसा आयेगा काल गहे कर केस ।
न जाने कित मारि है, क्या घर, क्या परदेस ।।

इक दिन ऐसा आयेगा, जंगल होये वास ।
ऊपर शव के हल चले, पशु चरेंगे घास ।।

हाड जलें यों लाकड़ी, मास जले ज्यों घास ।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास ।।

कहां गये वे अर्जुन योधा ? कहां गये वे भीम बली ।
मौत के आगे देखो लोगो नहीं किसी की पेश चली ।।

कहां गये वे दारा-सिकन्दर, कहां गई वह सब्ज़ परी ।
मौत के मुंह में सभी चले गये खुश्की रही न रही तरी ।

जिन के महलों में हज़ारों रंग के फानूस थे ।
झाड़ है उन की कब्र पर और निशां कुछ भी नहीं ।।

जहां था जमशेदी दरबार, शान से होता था मधुपान ।
वहां स्वच्छन्द घूमते सिंह, वहां स्वच्छन्द घूमते श्वान ।।

साहसी को बल दिया है, मृत्यु ने मारा नहीं है ।
राह ही हारी सदा, राही कभी हारा नहीं है ।।

बिजलियां काली घटाओं से कभी रोके रुकी हैं।
डूबते देखे भंवर, डूबती धारा नहीं है ॥

जो व्यथायें प्रेरणा दें, उन व्यथाओं को दुलारो ।
जूझ कर कठिनाइयों से रंग जीवन का निखारो ।
दीप बुझ बुझ कर जला है, वृक्ष कट कट कर बढ़ा है।
मृत्यु से जीवन मिले तो आरती उसकी उतारो ॥

पांव थर्राते थे जिनके सामने जाते हुए ।
देखा उन्हीं की खोपड़ी को ठोकरे खाते हुए ॥

फलक देता है जिस को ऐश उस को ग़म भी होते हैं।
जहां बजते हैं नक्कारे वहां मातम भी होते हैं ॥
किसी की उमर का लबरेज़ जाम होता है,
किसी का कन्दा नगीने पे नाम होता है ।
अजब सराय है दुनिया कि जिसमें शामो सहर,
किसी का कूच किसी का मुकाम होता है ॥

छुप गये वो साज़े हस्ती छोड़ कर ।
अब तो बस आवाज़ ही आवाज़ है ॥

हर इक दर्द का कर सके लोग चारा
अज़ल से न पाया किसी ने गुज़ारा ।
मिटे खाक में सैंकड़ों मसनद आरा,
न गोर-ए-सिकन्दर है न कब्रे दारा ।
मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे

(श्री दया शंकर नसीम)

है मौत में ज़रूर कोई राज़ दिलनशीं,
सब कुछ के बाद कुछ भी नहीं, यह तो कुछ नहीं ॥

किसी के मरने से यह न समझो कि जान वापस नहीं मिलेगी।
बईद शान-ए-करीम से है, किसी को कुछ दे के छीन लेना ॥

रहा मरने की तैयारी में मसरूफ़
मेरा काम और इस दुनिया में क्या था।

(श्रीयुत् अकबर अलाहाबादी)

मौत को समझे है गाफ़िल इख्तताामे जिन्दगी।
है यह शाम-ए-ज़िन्दगी सुबो दवाम-ए-ज़िन्दगी ॥

इन्सान पैदा होते ही बढ़ता है सूये मौत।
यह उम्र एक फासला है दरमियान में ॥

मौत रूपी रेल

जिस गाड़ी में जाना तुझ को, एक पल छिन में वो आती है।
कुछ देर नहीं बांधो बिस्तर, घण्टी उपदेश सुनाती है।
करे शण्ट और इञ्जन गर्जे है, सुन सुन जिया थर थर लर्जे है।
कर तर्क वतन उस देश चले, जिस से आनी नहीं पाती है।
इक उतरी आन सवारी है, इक चलने की कर रही तैयारी है।
दुनिया इक अजब स्टेशन है, जहां रेल चले दिन राती है।
जिसे जिस दर्जे में जाना है, वैसा महसूल चुकाना है।
यहां टिकट ही देखे जाते हैं, नहीं पूछते कौन सी जाति है।
यहां घूमते चोर उचक्के हैं, जो दाब धात के पक्के हैं।
कोई गांठ कतर ले जाता है, कोई करता आत्मघाती है।
जब होती रेल रवाना हैं, तब छूटे ख्वेश बेगाना है।

रोरो के पीछे देखे हैं, गाड़ी से पा कर झाती है।
जो ताज और तख्त का वाली है, अब जाता हाथ से खाली है।
जो कुनबे का अभिमानी हैं, अब संग न इस के साथी है॥

कह! क्या लाया तू संग तोशा है, तेरा जिस पर इतना भरोसा है।
खान पान का संग सामान नहीं, लगी भूख और प्यास सताती है॥

यदि कितना ही धन जोड़ेगा, उसे अन्त को इक दिन छोड़ेगा।
संग धर्म की बिल्टी जायेगी, और वस्तु संग नहीं जाती है॥

क्यों लम्बा पांव पसारा है,
चन्द मिनट का यां तो गुज़ारा है।
क्यों लड़े है साथ मुसाफ़िर के
तू अमीचन्द बड़ा उत्पाति है।

(महता अमीचन्द जी)

कविता

अब कहां चले अकेले मीता,
उठहु न करहु धरहि के चिन्ता।
खीर खण्ड घिउ पिण्ड सवारा,
सो तन लै बाहर कस डारा।
जो सिर रुच रुच बान्धी पागा,
सो सिर रतन बिगारत कागा।
हाड़ जरै जस लाकरि झूरी,
केस जरै जस घास के पूरी।
आवत संग न जात संगाती,
काह भए दल बांधे हाती।

माया को रस लैन न पायो,
अन्तहु जम-बिलारि होय धायो।
कहे कबीर नर अजहुं न जागा,
जम मुगदर सिर ऊपर लागा।।

० ० ० ० ०

हमको ओढ़ावै चदरिया, चलती बिरिया।
प्रान राम जब निकसन लागे, उलटी गई दोउ नैन पुतरियां।
भीतर ते जब बाहर लाये, छूटि गई सब महल अटरियां।
चारि जने मिलि खाट उठाइन, रोवत लै चले डगर डगरियां।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चली बस सूखी लकरियां।

० ० ० ० ०

जीवन एक जीव का पथ है,
मृत्यु बनी है विश्राम स्थल।
जीव जहां से फिर चलता है।
पा कर नव जीवन सम्बल।

(श्री मैथिलीशरण गुप्त)

भजन

यह दुनिया चन्द रोज़ा है, प्रभु का ध्यान कर लीजे।
गुज़रती जाती आयु है, इधर भी कान धर लीजे।
न जाने कौन से क्षण में बजेगी आखरी नौबत।
नकारा कूच का बजता है जिस जानिब नज़र कीजे।।

पड़े सोते हो तुम अब तक गये साथी निकल कोसों।
कठिन रस्ता है मन्ज़िल दूर उठने का सफ़र कीजे।।

खुशी के साज़ और सामां फिरे है जिन पे तू शादां।
स्थिर रहना नहीं कोई निगाह अपनी जिधर कीजे।।

फंसाया हम को मोह माया की ज़ंज़ीरों में तृष्णा ने।
तसव्वर दुःख को सुख करता हैं मन इसकी खबर लीजो।।

प्रभु की प्रेम भक्ति में मगन होने का कर उद्यम ।
एकाग्र मन हो सन्ध्या में अगर शामो सहर कीजे ।।

वृति सब पाप की छोड़ो, सदा मन धर्म में जोड़ो ।
रहेगी इन्द्रियां वश में अगर इन पर जबर कीजे ।।

करो सत्संग से प्रीति मिलेगा धर्म धन तुम को ।
यह तोशा सब से बढ़कर है इसी के संग सफर कीजे ।।

भजन

ज़रा तू सोच ऐ गाफिल कि दम का क्या ठिकाना है ।
निकल जब यह गया तन से तो अपना भी बेगाना है ।
मुसाफिर तू है दुनियां में, सराय है भूल मत गाफिल।
सफर परलोक का आखिर तुझे दरपेश आना है ।।

लगाता है अबस दौलत पे क्यों तू दिल को अब नाहक ।
न जावे संग कुछ हरगिज़ यहीं सब छोड़ जाना है ।।

रहो नित याद में हक की अगर अपनी शफा चाहो ।
अबस दुनिया के धन्धों में हुआ तू क्यों दीवाना है ।।

भजन

नेकी के कर्म कमाजा रे, दुनिया से जाने वाले ।
यह तन तेरा तरुवर हैं, नेकी ही क्षीर सागर है ।
इस तरुवर के फल खा जा रे — — ।।1।।

यह धन यौवन संसारी, है दो दिन की फुलवारी ।
कोई खुश रंग फूल खिला जा रे — — ।।2।।

तुझ से धन अन्त छूटेगा, जाने किस राह लूटेगा ।।
इसे पर हित हेत लगा जा रे — — ।।3।।

जग सेवा है सुख देवा, कर दीन दुखी की सेवा।
यश पाना है तो पाजा रे — — ॥4॥

यह कंचन् काया तेरी, हो अन्त राख की ढेरी।
इस से जो बने बना जा रे — — ॥5॥

भजन

उठ जाग धर्म पहचान, पापी मन सोए पड़ा।

मुश्किल से यह देह है पायी
जो कि तूने सोये गंवायी
तज गफलत नादान ॥ पापी मन......

वक्त गया फिर हाथ न आवे,
पीछे से तू क्यों पछतावे।
मौत है सिर पर जान ॥ पापी मन......

बड़े बड़े राजा माया धारी,
विक्रम, भोज, दधीचि से भारी।
काल ने मारे आन ॥ पापी मन......

अर्जुन भीम से योधा भारी,
जिन से कांपे थी सृष्टि सारी।
कहां गये—कर ध्यान ॥ पापी मन......

मानुष देह को नाव बना ले,
कर्म धर्म का चप्पू लगा ले।
जल्दी कर नादान ॥ पापी मन......

भजन

हे मन बैठ प्रभु गुण गाना ।

हृदय अन्दर देव प्रभु की, हरदम ज्योति जगाना ।।

जन्म-जन्म का है वह साथी, तोड़ निभाने वाला साथी ।।

छोड़ दे आस ज़माने भर की, शरण उसी की आना ।।

न कोई संगी साथी तेरा, मात पिता सुत भाई तेरा ।।

आया था तू एक अकेला, एक अकेले जाना ।।

सोच ज़रा दिन बीत रहे यूँ, बचपन यौवन बीत रहे यूँ ।।

गुज़र गया जो हाथ धरे यूँ, फिर वह लौट न आना ।।

न दे दोष किसी को बन्दे, अपनी देख कहानी बन्दे ।।

करनी करले अपनी बन्दे, छोड़ दे पाप कमाना ।।

देख ज़रा वह देख रहा है, तेरी करनी परख रहा है ।।

अन्दर बाहर झांक रहा है, भूल इसे मत जाना ।।

श्रद्धा भक्ति प्रेम बढ़ा के, एक उसी का रंग चढ़ा के ।।

प्रभु दर्शन की पावन राह में, हर दम कदम बढ़ाना ।।

भजन

काया का पिंजरा डोले रे, इक सांस का पंछी बोले ।
इक सांस का पंछी बोले रे, तू ओ३म् नाम क्यों न बोले ।।
प्रात. बोले शाम भी बोले, दिन में बोले रात भी बोले ।
तू हरदम ओ३म् पुकारे रे । इक सांस......

जो आया उसने जाना, फिर जाने से क्यों घबराना ।
अब वृथा पाप क्यों तोले रे । इक सांस......

कौन यहां बन्दे, है किसी का, रिश्ता है सब जीते जी का ।
काहे को ममता जोड़े रे । इक सांस......

कर ले कुछ तू नेक कमाई, बैठ नहीं रहना है भाई ।
तेरी आयु बीतती जाये रे । इक सांस......

आओ मिलकर ध्यान लगायें, दिन-दिन हो नज़दीक जायें ।
अब इधर उधर मत डोले रे । इक सांस......

द्वेष ईर्ष्या दूर भगा के, प्रेम की गंगा यहां बहा के ।
फिर ओ३म् के नग़मे गाये रे । इक सांस......

भीड़ पड़े पर काम जो आये, वह है जोकि तोड़ निभाये ।
तेरा जन्म-जन्म का साथी रे । इक सांस ......

ध्यान से सुन यह अमर सन्देशा, ओ३म् ही ओ३म् ही तू कहे हमेशा ।
तेरी आत्मा की आवाज़ रे, इक सांस का पंछी बोले ।।

भजन

जिन्हां घर झूलते हाथी हज़ारों लाख थे साथी।
उन्हां नू खा गई माटी तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥
नकारा कूच दा बाजे कि मारू मौत दा बाजे।
ज्यों सावन मेघला गाजे ॥ तू......

कहां गये खान मद माते जो चांद सूर्य को जाते।
न देखे वह कहां जाते ॥ तू......

जिन्हां घर लाल और हीरे सदा मुख पान के बीड़े।
उन्हां नू खा गये कीड़े ॥ तू......

जिन्हां घर पालकी घोड़े थे तन पर रेशमी जोड़े।
वह भी मौत ने न छोड़े ॥ तू......

जिन्हां दे बाल थे काले मलाईयां दूध से पाले।
उन्हां नूँ लग गये जाले ॥ तू......

जिन्हां संग न्योह था तेरा उन्हें किया खाक में डेरा।
न फिर वह करेंगे फेरा ॥ तू......
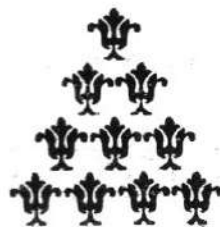
मृत्यु को जीतो

मृत्यो: पदं योपयन्तो यदैत, द्राघीय: प्रतरं दधाना:
आप्यायमाना: प्रजया धनेन शुद्धा: पूता: भवत यज्ञियास: ।।

अथर्व 12-2-30

पैर को यदि मृत्यु के तुम ठेलते आगे बढ़ोगे,
दीर्घ आयु प्रजा अतुल धन धान्य से परितृप्त होगे ।
काम तुम कोई विश्व में मौलिक करोगे,
और निज अस्तित्व को सार्थक बना करके रहोगे ।
निरुद्देश्य विचर रहे क्यों ?

फिर उठो यह घोषणा कर दो कि मृत्युञ्जयी तुम्हीं हो,
यज्ञमय जीवन बना कर बन गये अक्षय तुम्हीं हो ।
बाह्य आभ्यन्तर सभी विधि शुद्धता में लय तुम्हीं हो,
सृष्टि और प्रलय न बाहर, सृष्टि और प्रलय तुम्हीं हो ।
किन्तु आज ठहर रहे क्यों ?

—श्री जगन्नाथ प्रसाद

मुद्रक : जे. के. प्रिंटर्ज़, 289, पुरानी रेलवे रोड़, जालन्धर शहर ।